श्री सत्यनारायण शर्मा

आँसुओंका देश

[एक मौलिक दर्शन]

आँसुओंका देश

लेखक
श्री सत्यनारायण शर्मा

प्रकाशक
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
२६५।१ हरिसन रोड,
कलकत्ता ।

प्रथम संस्करण

मुद्रक
जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,
८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता ।

अर्पण

सांध्य प्रतीची-क्षितिजके मेघ जिसकी
रूप-श्रीको देखकर लज्जासे अरुणिम
हुए जा रहे हैं, अपने उसी
खोये हुए साथी को।

—*—

प्राथमिका

मुसकराती हुई न जाने किस दूरवर्त्ती ग्रहसे उतरकर एक दिन मृत्यु अपने तम-श्यामल अंचलमें न जाने किसका संदेश लेकर आयेगी और मुझे उसके साथ चल देना होगा।

मेरी या मेरे साथियोंकी इच्छा या अनिच्छा अपनी निस्सारता उस समय अच्छी तरह स्पष्ट कर सकेगी।

वह मुझे कहांतक पहुंचायेगी, मैं नहीं जानता! लेकिन उसके बाद मेरी यात्राका दूसरा अध्याय आरम्भ होगा, जो इस वर्तमान अध्यायकी अपेक्षा अधिक सतेज होगा, यह मैं जानता और मानता हूं!

इसी कारण मेरे अधिकांश उद्गार मृत्युके उसपारकी महिमासे समन्वित रहकर ही अपनेको धन्य मान सके हैं।

यह ग्रह हमारा चिरन्तन आवास नहीं, यह हम अच्छी तरह जानते हैं! दुनियांका प्रत्येक व्यक्ति जानता है!

लेकिन प्रत्येक व्यक्ति यह नहीं जानता कि आखिर यह रैनवसेरा क्या है, क्यों है और हमारा यहां आवास किन कारणोंसे है! मेरा विश्वास है, दुनियांके अधिकांश व्यक्ति इसे जान नहीं सकते! और इस न जान सकनेमें ही इस अंधकारित ग्रहके अस्तित्वकी सार्थकता है।

मैं जानता हूं, यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं कहता! लेकिन मैं वही लिखता हूं और वही लिखूँगा, जिस पर मेरा विश्वास है। यहां यह कहना निरर्थक न होगा कि मेरा विश्वास मेरी चिन्तन-शक्तिका सशक्त आधार

लेकर ही जीवित है,—केवल कल्पनाओं और संवेदनाओंका संबल पाकर नहीं ।

'आँसुओंका देश' न बाइबल है, न वेद है, न पुराण या कुरान है । यह केवल 'आँसुओंका देश' है और इसका लेखक न अपनेको पैगंबर कहता है, न ऋषि, न और-कुछ । वह वही है, जो वह है ।

इस पुस्तकको दुनियाँके बाजारमें रखते हुए मेरी दृष्टि उन जीवन-यात्रियोंकी ओर है जो अपने प्राणोंमें एक अविदित पीड़ा सम्हाले हुए उस देशकी ओर जानेके लिये बेचैन हो रहे हैं, जहाँ उन्हें इस असह्य परायेपन की कठोर अनुभूतिसे परित्राण मिल जायगा,—जो यह अनुभव तो करते हैं कि उनका देश कहीं अन्यत्र है, किन्तु इस अनुभूतिका धुँधलापन जिन्हें इस विज्ञान-युगमें पीड़ित करता रहता है !

—सत्यनारायण शर्मा

(१)

चन्द्र-किरणोंसे शृङ्गारित यामिनी। अन्तरिक्ष-पथमें विशीर्ण पाटल-पंखड़ियोंके समान बिखरे हुए कुछ श्वेत बादल।

चारों ओर मरघटकी सी नीरवता छायी हुई है। मानव-जातिका और इस ग्रहके अन्य प्राणियोंका समस्त कर्म-कोलाहल निद्राके क्रोड़में विमूर्च्छित होकर गिर पड़ा है।

सुधांशु कभी श्वेत बादलोंसे चुम्बित होता है, कभी श्वेत बादल सुधांशुसे चुम्बित होते है। लगता है, जैसे उनकी इस व्योम-क्रीड़ाको देख-देखकर कतिपय नक्षत्र-कुमार मन्मथ-पीड़ित होकर सिहर-सिहर उठते हों।

प्रतीची-क्षितिजको अपनी ज्योत्स्ना-धौत हरीतिमासे आवरित करनेवाली विटपी-मालाओंके कुछ ही ऊपर यामिनीके कतिपय स्वेद-सीकर चमक रहे हैं—तारकोंके ही समान।

सरोवरके सुरम्य तटपर बैठकर मैं इस नैश सुषमाको देख रहा हूँ। अन्तर्देशमें नृत्यनिरत कामना-कुमारियोंका नूपुर-रव सुप्त स्वप्न-कुमारोंको जागृत कर रहा है।

अन्तरिक्ष—पथके ये सहस्रों तारे!.........यह उल्लास और उन्माद वितरण करनेवाला चन्द्रमा!.......और, चन्द्रिका-स्नाता यामिनीके कोमल करोंसे शृंगारित यह छोटा सा ग्रह, जिसपर बैठकर मैं विश्वके एक नन्हेंसे भागको देख रहा हूँ।......तारे झिलमिल—झिलमिल कर रहे हैं; चन्द्रमा यौवन-विह्वल होता हुआ व्योम-सरोवरमें बहा चला जा रहा है!

सोचता हूँ, आकाश-पथके इन अगणित नक्षत्रोंमेंसे किसी एक नक्षत्रके किसी ग्रहमें भी कोई मेरी ही तरह बैठा होगा और वहाँसे अन्तरिक्षका नैश दृश्य देख रहा होगा। हो सकता है, वहाँके अन्तरिक्षमें एक शशि नहीं, दो शशि हों, या इससे भी अधिक हों। हो सकता है, इस ग्रहसे इस विश्वके जितने नक्षत्र मुझे दिखलायी दे रहे हैं, उससे अधिक वहाँके स्वच्छ आकाशमें दिखलायी देते हों। वह उस ग्रहके किसी स्थानपर,—किसी तृण संकुल सरिता-तटपर या अजस्र झर-झर रव करनेवाले निर्झरकी तटवर्त्तिनी पाषाण-शिला पर बैठा होगा और हो सकता है, इस समय उसकी दृष्टि उसी स्वर्ण-कणपर अटकी हुई हो, जिसे हम प्रतिदिन प्रभातमें प्राची—क्षितिजसे धरित्रीपर किरणें फेंकते हुए पाते हैं!—जिससे प्रकाशकी भीख माँग कर ही चन्द्रमा राकाको प्रहसित कर पाता है।

यह विराट विश्व!.... ...ये कोटिशः सूर्य!........ये अगणित ग्रह-उपग्रह!........कितना राशि-राशि विस्मय प्राणोंमें जाग उठता है!........

उन ग्रहोंमें क्या हो रहा होगा! वहांके अधिवासी क्या कर रहे होंगे!.... उनकी जीवन-धारा किस दिशाकी ओर प्रवाहित हो रही होगी!

उन ग्रहोंके सम्बन्धमें और वहांके अधिवासियोंके सम्बन्धमें हम कुछ भी नहीं जानते। हमारा सर्वोत्कृष्ट दूरवीक्षण यंत्र तो अभीतक तारोंके ग्रहोंको देख सकनेमें ही समर्थ नहीं हो पाया है!...........कितनी विवशता है!

हो सकता है, इन अगणित ग्रहोंमें कहीं वही सुषमा छायी हुई हो, जो हमारे इस ग्रहके कुछ भागोंमें मधुमास ले आता है! हो सकता है, कहीं इस नीरव निशीथकी सी कौमुदीका प्रसार हो रहा हो! राशि-राशि उल्लास और मादकता छा रही हो! हो सकता है, एक ग्रहसे दूसरे ग्रह तक यात्रा करनेमें वे लोग समर्थ हों और विश्वका सहर्ष पर्यटन कर रहे हों।

और, क्या यह नहीं हो सकता कि उनमेंसे कुछ हमारे सौर मण्डल तक भी आते हों, किन्तु यहांके विचित्र वातावरणसे भयभीत हो कर वापस चले जाते हों!

हमारा यह सौर मण्डल!........ये बुध, शुक्र, मंगल प्रभृति ग्रह!.... उन्हींमेंसे एक हमारी यह पृथ्वी भी, जहांसे विश्वके अन्य ग्रहोंके सम्बन्धमें कुछ जानना तो दूर रहा, अपने सहोदर ग्रहोंका ज्ञान प्राप्त करनेमें भी कठिनाइयाँ हो रही हैं।

हमारा उत्कृष्टतम वायुयान भी हमें इस ग्रहसे कुछ ही मील दूर ले जा सकता है!........इस प्रकार इतनी निर्ममताके साथ हम इस माया-कारागार में बन्दी बना दिये गये हैं! न यहांसे विश्वके अन्य ग्रहोंके सम्बन्धमें हम कुछ जान ही सकते हैं और न इच्छानुसार जा ही सकते हैं!

और, इस ग्रहकी दृश्यावली ! ·······उफ ! प्राणोंमें विचित्र घृणा उद्रिक्त हो उठती है ! इतना असौंदर्य और कुत्सा चारों ओर परिव्याप्त है कि रोम-रोम कभी-कभी तो इस अयाचित बन्धनकी वेदनासे रोने लगते हैं। इस ग्रहके सर्वोत्कृष्ट प्राणियोंकी जीवन-धारामें जो विष मिश्रित है, वह प्राणों में विद्रोहकी आग फूँक देता है !

प्राभातिक किरणोंका संस्पर्श प्राची—अम्बरमें होते ही चारों ओर नारकीय कोलाहल छा जायगा ! रौरवसे भी निर्वासित विचार-कम्पन इस ग्रहके मानव-संकुल भागोंमें छाने लगेंगे !

क्या इस ग्रहकी असुन्दरता पर—विश्वके इस कारागृहकी दयनीय अवस्था पर अन्य ग्रहोंके निवासियोंका ध्यान नहीं जाता और यदि जाता भी है तो क्यों वे इसको समुन्नत बनानेका और इसकी साम्प्रतिक कारुणिक अवस्थाका निराकरण करनेका प्रयास नहीं करते है ? तीन सौ पैंसठ दिनोंमें सूर्यके चारों ओर परिक्रमा देनेवाला हमारा यह वासस्थल सारेके सारे विश्वसे इस प्रकार विच्छिन्न क्यों हैं ? हम दूसरे ग्रहोंसे सम्बन्ध-स्थापना करनेमें असमर्थ हैं, किन्तु दूसरे ग्रहोंके अधिवासी हमसे सम्बन्ध-स्थापना करनेका प्रयास क्यों नहीं करते ?

क्या इस ग्रहपर निवास करनेवालोंको साराका सारा विश्व इतनी घृणाकी दृष्टिसे देखता है कि वह इससे किसी प्रकारका भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहता ?

---

(२)

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि हमारा यह नगण्य सौरमण्डल विश्वके अन्य सौरमण्डलोंसे अत्यधिक दूरीपर अवस्थित है,—शायद उतनीही दूरीपर जितनी दूरीपर हमारे ग्रहके विभिन्न देशोंमें निर्वासन-द्वीप हुआ करते हैं। ज्योतिर्विज्ञानके अधिकारी विद्वानोंने पता लगाया है कि यहाँसे सूर्य जितनी दूरीपर है,उससे २७०,००० गुनी अधिक दूरीपर निकटतम तारा है। अर्थात इस ग्रहसे सर्वाधिक दूरीपर अवस्थित ग्रह प्लूटोसे ७,००० गुनी अधिक दूरीको पार करनेके उपरान्त तब हमें कोई तारा मिलेगा।

इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि विश्वके अन्य निवासस्थानोंसे हमें कितनी दूरीपर रखा गया है!—जैसे, यह ग्रह मारक कीटाणुओंसे भरा पड़ा हो और इसीलिये इसे इतनी दूरीपर रख दिया गया है, और इससे सब प्रकारका सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिया गया है।

राजयक्ष्माके रोगियोंको जिस प्रकार मानव-समूहसे हटाकर दूरवर्ती स्थानोंपर रख दिया जाता है, उसी प्रकार !!

प्लूटोसे, जो कि सबसे अधिक दूरीपर स्थित ग्रह हैं, इस ग्रह तक प्रकाशके आनेमें करीब चार या पाँच घण्टोंका समय लगता है, किन्तु निकट-तम तारोंसे यहाँ तक प्रकाशके आनेमें पाँच-सात वर्षोंका सुदीर्घ समय लग जाता है। हमारा वर्त्तमान वासस्थल एक दूरवर्ती उपनिवेशसे अच्छी तरह उपमित हो सकता है,—उस दूरवर्त्ती उपनिवेशसे, जहाँ पहुँचकर पुनर्वार अपने देशको लौटना अतिशय कठिन हो जाता है! हमारी पृथ्वी जिस सौरमण्डलमें है, वह इस विराट विश्वमें सर्वथा अलग रखा गया है—अन्य सौरमण्डलोंकी छायासे भी दूर! हमारी इस पृथ्वीपर हम जो उपनिवेश बनाते हैं, उनसे दूरीमें यह उपनिवेश कहीं आगे बढ़ा हुआ है! सर जेम्स जींसने अपनी एक पुस्तकमें इस सौरमण्डलके इस दूरवर्त्ती अस्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि यदि हम इस ग्रहमंडलीको इस विश्वमें वही स्थान दें जो इङ्गलैण्डके एक नन्हेंसे गाँवको देते हैं तो दूसरा ग्राम अर्थात् दूसरे तारेको हमें अफ्रीका या साइबेरियामें कहीं मानना पड़ेगा!

सचमुच, हम गंभीरतापूर्वक इस विषयपर विचार नहीं करते कि हम कितनी दूरीपर हैं, अन्यथा एक विचित्र वेदनामयी भावनासे हमारा अन्तस्तल काँप उठे!

रजनीके तिमिरमें तो हम कमसे कम विश्वके अन्यलोकोंको अन्तरिक्ष-पथमें बिखरे हुए हीरक-कणोंके रूपमें देखनेमें समर्थ तो हो जाते हैं, किन्तु दिवसके मायामय प्रकाशमें तो वह भी नहीं हो पाता। ऊपर सूर्यकी

किरणोंसे आलोकित सुनील वितान रहता है और नीचे विविध प्राणियोंसे भरी हुई धरित्री।

और, नेत्रोंके सामने रहता है मानव-जीवनका भयावना स्वरूप!—उसकी विचित्र समस्याएँ, जिन्हें हल किये बिना भी निस्तार नहीं!

शायद इसीलिये दिवसके प्रकाशकी अपेक्षा नीरव रजनीकी घड़ियाँ सत्यानुसन्धानके लिये अधिक उपयुक्त होती हैं! ·······शायद इसीलिये नैश जागरणसे उमगी हुई आँखें ही सत्य और सुन्दरको अधिक निकटसे देख पाती हैं!

× × ×

यह कौमुदी-विभोर विभावरी कमसे कम इस बातपर तो अवश्य प्रकाश डाल रही है कि इतना उपेक्षित और अवमानित होनेपर भी हमारा यह ग्रह श्री-सुषमासे पूर्ण वञ्चित नहीं। सौन्दर्यकी स्वर्णाभ किरणें यहाँ पर भी आती रहती हैं—कभी मार्ग भूलकर और कभी स्वेच्छासे।

सरसीकी प्रशान्त लहरोंपर किन्हीं अदृश्य हाथोंसे यह जो कनक-किञ्जल्क-जाल बिखेर दिया गया है, क्या वह प्राणोंको आह्लादित करनेकी कम क्षमता रखता है? निकटवर्त्ती गिरि-शिखर पर व्योमके इस शशि-पात्रसे छलक-छलककर गिर पड़नेवाली ज्योत्स्नाकी वारुणी क्या इस ग्रहको एक प्राणप्रद सुषमा नहीं प्रदान कर रही है?

चारों ओर एक स्वर्गिक सुषमाका प्रसार होता-सा प्रतीत हो रहा है!

लेकिन, यह कबतक? ·····यह ज्योत्स्ना-वर्षण, यह तारक-निचय और यह नैश उल्लास कब तक रह सकेगा? प्राची-पथकी उषाकुमारीके शोणितसे रञ्जित करता हुआ प्रभाकर इस माया-पथमें प्रविष्ट होगा और

चारों ओर एक नारकीय कोलाहल छा जायेगा !—रौरवके वातावरणमें परि-पालित होनेवाली विचारधाराएँ इस ग्रहके आधे भागमें प्रवाहित होने लगेंगी ! इस ग्रहके अधिवासी जागृत हो-होकर वसुन्धरापर असौन्दर्य और हाहाकारका प्रसार करने लगेंगे !

किन्तु इसमें हतभाग्य मानवोंका भी उतना दोष नहीं है ! उनकी परिस्थितियाँ ही वैसी हैं ! वे अपनी परिस्थितियों पर अधिकार की स्थापना कर सकें, इतनी क्षमता उनके दुर्बल मस्तिष्कमें कहाँ ? सहस्रों वर्षोंसे वे इस पृथ्वीके अन्य प्राणियोंकी ही तरह भोजन प्रभृतिकी ही प्राप्ति-प्रचेष्टाओंमें संलग्न रहते आये हैं। वन्य पशु जिस प्रकार अपनी उदरपूर्तिके लिये अन्य पशुओंकी हत्या कर डालते हैं, उसी प्रकार वे भी अपनी उदर-पूर्त्तिके लिये शत-शत हिंसात्मक उपायोंका अवलम्ब ग्रहण करते हैं।

मानव-जातिके अतीतकालीन इतिहासको और उसकी वर्त्तमान कर्म-प्रचेष्टाओंको देखते हुए तो यही कहना पड़ता है कि जिस प्रकार अपने अस्तित्वकी सुरक्षाके लिये इस ग्रहके अन्यान्य प्राणियोंको सींग, दाँत, नख प्रभृति साधन मिले हैं, उसी प्रकार मनुष्योंको मस्तिष्क नामक साधन मिला है। इसके द्वारा वह अपने अस्तित्वकी रक्षा करता है और अन्य प्राणियोंके अस्तित्वको विपन्न करता है—पशुओंकी ही तरह।

जीवनके उषाकालसे लेकर मरण-दिनान्त तक मानवोंका मस्तिष्क रोटी, वस्त्र, गृह प्रभृतिके प्रश्नोंमें ही उलझा रहता है। किसी भी देशमें जाइये, किसी भी नगरमें जाइये, किसी भी ग्राममें जाइये। सर्वत्र आपको मानवताका यही पाशविक एवं अधःपतित स्वरूप मिलेगा। एक विचित्र

पागलपन और मरणमुखी मूर्खतासे आक्रान्त यह मानव-जीवन किस कुम्भी-पाकसे निर्वासित हुआ है, समझमें नहीं आता !

विश्वके अन्य समुन्नत, सुन्दर ग्रहोंसे करोड़ों मीलकी दूरीपर अवस्थित यह हतभाग्य ग्रह अपने इस हाहाकार भरे एकाकीपनकी भीषण यन्त्रणासे कबतक कराहता रहेगा, कौन कह सकता है ?

(३)

आत्माके अमरत्वपर 'दुनियाँ-मेरी दृष्टिमें' में मैं पर्याप्त प्रकाश डाल चुका हूं। अतएव इस सम्बन्धमें यहां कुछ भी लिखना निरर्थक होगा। आत्मा शाश्वत है, अनादि और अनन्त है; शरीर इस माया-कारागारमें उसे प्रदान किया गया परिधान है।

इसपर मेरा विश्वास ही नहीं, दृढ़ विश्वास है। और इस विश्वासका आधार कविकी कोमल-कान्त कल्पना नहीं, वैज्ञानिक गवेषणाएँ हैं।

किन कारणोंसे इस विराट विश्वमें इस हाहाकार भरे मायालोककी सृष्टि हुई और आत्माओंको किन अपराधोंके कारण निर्वासनको निदारुण वेदनाओंका स्वागत करते हुए यहां आकर यह भौतिक परिधान स्वीकार करना पड़ा, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर स्वयं एक प्रश्न सा बन जाता है!

जो लोग मेरे इस विश्वासको केवल अनुमान पर ही आधारित समझते हों, उन्हें भी इसपर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिये, क्योंकि अनुमानका

महत्व अवहेलनीय नहीं। समस्त वैज्ञानिक आविष्करणोंका श्रेय सशक्त एवं उर्वर मस्तिष्कोंके अनुमानोंको ही है। विज्ञानकी कोई भी शाखा क्यों न हो, उसमें कई ऐसी बातें आरम्भमें ही मान ली जाती है, जिन्हें प्रमाणित करनेकी क्षमता विज्ञानके प्राणोंमें नहीं !—कभी आ ही नहीं सकती ! उन स्वयंसिद्ध बातोंके बिना विज्ञानकी कोई भी शाखा एक भी कदम आगे नहीं बढ़ा सकती ! इस भौतिक जगत्‌के जितने भी विज्ञान हैं, उन सबोंमें यह मान ही तो लिया गया है कि एक भौतिक जगत है जो हमारी चेतना-शक्तिके अभाव में भी अपनी सत्ता रखता है ! अन्यथा क्या इसका कोई भी प्रमाण विज्ञान दे सकता है ?

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिकोंकी अन्य बहुत सी बातें भी केवल अनुमानपर ही आधारित है ओर उन अनुमानोंको अस्वीकार कर देनेपर वर्त्तमान विज्ञान के प्राचीर-पतनका पूरा भय उपस्थित हो जायगा।

'दुनियां—मेरी दृष्टिमें' में अन्य बातोंके साथ ही मैं यह भी प्रमाणित कर चुका हूँ कि यह ग्रह हमारा चिरन्तन वासस्थल नहीं। चिरन्तन वासस्थल होता तो हम यहांके नियमोंसे अपनेको इतना अनभिज्ञ नहीं पाते ! यहांके कण-कणमें छाया हुआ परायापन यही सिद्ध करता है कि यह लोक हमारा प्यारा वेश्म नहीं, हमारे यात्रा-पथका रैन बसेरा है !

फिर, जब हम इस ग्रहके चिरन्तन अधिवासी नहीं,—अन्यान्य लोकोंसे यहाँ आ पहुँचे हैं और यहांके मायामय वातावरणमें हमारी अन्तर्चेतनाको मूच्छित कर दिया गया है और हमें बन्दी बना दिया गया है, तब क्या हमारे देशवासी इतने निष्ठुर और ममताहीन हैं कि वे हमारे पास किसी प्रकारका सन्देश तक नहीं प्रेषित करते !—हमारे बन्धनोंको छिन्न भिन्न करनेका

प्रयास करना तो दूर रहा !! या, यह उनकी शक्तिके सर्वथा बाहरकी बात है ! दुर्निवार कामना होते हुए भी—हमें बन्धनमुक्त करनेकी अदम्य आकांक्षाओंके होते हुए भी, हो सकता है, वे सर्वथा विवश हों !

साथ ही, यह भी हो सकता है कि उन्हें पता ही न लग पा रहा हो कि हम किस अंधकारावृत कारामें आकर बन्धनमें जकड़े जा चुके हैं, यद्यपि इसकी सम्भावना कम दीखती है ।

जो हो, आगे बढ़नेके पहले मैं पाठकके समक्ष दो बातें स्पष्ट कर देना चाहता हूँ और इस पुस्तकको समाप्त करनेके पहले तक इन दोनोंको सत्य मान लेना आवश्यक है तभी मेरी इस पुस्तकका पढ़ना सार्थक हो सकेगा । पुस्तकका अन्तिम अध्याय समाप्त करनेके उपरान्त इन्हें मानना या न मानना पाठककी इच्छापर आधारित है । पहली बात तो यह कि हम इस ग्रहके चिरन्तन अधिवासी नहीं हैं । किसी दूसरे ग्रहसे अज्ञात कारणवश यहां चले आये हैं । यह आवश्यक नहीं कि वह ग्रह इसी विश्वका हो, वह अन्य द्वीप विश्वका भी हो सकता है । दूसरी बात यह कि जन्मके पहले हमारा जो व्यक्तित्व था, वही मृत्युके उपरांत भी रहेगा—इस जीवनके अनुभवोंसे संयुक्त ।

हम इस ग्रहके चिरन्तन अधिवासी नहीं हैं, इसके समर्थनमें विज्ञान सम्मत प्रमाण नहीं दिये जा सकते, किन्तु अपने व्यक्तित्वकी—अपनी इस सचेतन सत्ताकी गहराइयोंमें प्रविष्ट होनेपर इसकी सत्यता स्वयं प्रोद्भासित होने लगती है—एकाएक मेघमुक्त हो जानेवाले राकेशकी तरह !

यह तो मानी हुई बात है कि हमारे अन्तर्देशमें सर्वदा एक अविज्ञानित अभावका भूकम्पन-सा होता रहता है ! सदैव हमें इसकी अनुभूति होती

रहती है कि कहीं कुछ खो गया है,—हम कहीं कुछ भूल आये हैं। कविको इस अभावकी अनुभूति अन्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा अधिक होती है, क्योंकि वह कवि है। अन्य व्यक्तियोंको भी इसकी—इस अभावकी प्रतीति होती है, किन्तु दूसरे ही रूपमें। और इस अभावकी पूर्तिका वे आमरण प्रयास भी करते रहते हैं। कभी वे यशके पीछे दौड़ते हैं, कभी अधिकार-वृद्धिके पीछे। कभी धन-संचयनके द्वारा ही इस अभावको दूर करनेकी चेष्टाओंमें संलग्न होते हैं। किन्तु कभी भी उनके प्राणोंके रसको निचोड़नेवाला यह अभाव दूरीकृत नहीं हो पाता! कभी भी वे अपनी हस्तीको सम्बोधित करके शान्तिपूर्वक यह नहीं कह पाते कि हां, तू जो चाहती थी वह तूने पा लिया। ईप्सित वस्तुकी सम्प्राप्तिके उपरान्त भी वही चिरागत अतृप्ति और अभावकी मर्मन्तुद वेदना स्मशानकी आधी रातमें जलायी गयी दीपककी शिखाकी तरह प्राणोंमें जलती रहती है! कवि श्री रवीन्द्रनाथने इस भावनाकी अभिव्यक्ति करते हुए एक स्थानपर लिखा है—'हाय! जो चाहता हूं, वह पाता नहीं और जिसे पा लेता हूँ, उसे चाहता नहीं।'

मैं समझता हूं, इस समय इस ग्रहका कोई भी मानव यह कहनेका साहस नहीं कर सकता कि उसके अभावोंकी पूर्ति हो गयी और अब किसी प्रकारकी भी रिक्तता उसके जीवनमें नहीं है। लेकिन यह प्रश्न उन्हींसे करना चाहिये, जो इसकी गंभीरता और महत्तासे अभिज्ञ हो और अपनी सत्ताका विश्लेषणात्मक अध्ययन कर सकें, क्योंकि सही उत्तरकी आशा उन्हींसे की जा सकती है।····और, जब वर्तमान युगमें हमें यह अभाव सर्वव्यापी दृष्टिगत होता है तो हमें यह कहनेका क्या अधिकार है कि इस ग्रहके अतीतने भी इसी प्रकारके अभावसे ग्रस्त मानवोंको नहीं देखा होगा?

हाँ, भविष्यके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इस ग्रहका भविष्य क्या होनेवाला है, यह कौन कह सकता है? हो सकता है, यह सदैव इसी प्रकारका रहे। यह भी हो सकता है कि किसी उत्कृष्ट लोकका निवासी यहां आकर इसको अभिनव सुषमा प्रदान कर दे,—यहांके निवासियों की जीवन-धारा ही दूसरी ओर मोड़ दे!

साथ ही, क्या यह नहीं हो सकता कि यह ग्रह ही सदाके लिये नष्ट हो जाय—विश्वमें इसका कोई चिह्न तक अवशिष्ट न रह सके! या, यह एक भयावने श्मशानके रूपमें परिणत हो जाय!!

इस अभावको तबतक दूर किया भी नहीं जा सकता, जब तक कि इस मायालोकके बन्धनोंसे आत्मा मुक्ति लाभ न कर ले और अपने लोकमें जाकर विप्रयुक्त सहचरोंसे न मिल ले! इस ग्रहके मायामय वातावरणमें इस वियोगकी वेदना अपनेको नानाविध रूपोंमें अभिव्यक्त करती है। किन्तु उसकी सर्व-सुभग अभिव्यक्ति कविकी कविताओंमें ही हो पाती है क्योंकि इस लोकका वातावरण कविके प्राणोंको अन्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा जितना ही अधिक पीड़ित करता है, उसकी अन्तश्चेतनाको शक्तिहीन भी उतना ही कम कर पाता है!

इसीलिये अन्य सत्यानुसन्धानियोंकी अपेक्षा कविके पास ज्ञानका आलोक अधिक अंशोंमें विद्यमान रहता है! अन्य प्राणी अहर्निश परिश्रम करके भी जिसकी छाया तक नहीं छू पाते, वही ज्ञानका देवता मुसकराता हुआ अनाहूत कविके उटजमें चला आता है और अपनी ज्योत्स्नासे पारिपार्श्विक वातावरणको एक अभिनव सुषमा प्रदान करने लगता है!

भौतिक शरीरको परित्यक्त करनेके उपरान्त हमारे व्यक्तित्वका क्या

रूप होता है, इस सम्बन्धमें The survival of Man में विख्यात वैज्ञानिक Sir oliver Lodge ने, और Psychical Research में Professor W. Barret ने और Human Personality में महामनीषी Fredrick Myres ने लिखा है, वह पठनीय और विचारणीय है। 'दुनिया मेरी दृष्टमें' मैं इस सम्बन्धमें काफी लिख चुका हूँ। उसकी पुनरावृत्ति मुझे यहां नहीं करनी है।

भौतिक शरीरको छोड़नेके उपरान्त हमारा जो व्यक्तित्व रहता है, वह हमारे वर्तमान व्यक्तित्वसे सहस्रगुणित अधिक सुन्दर, सतेज और सशक्त होता है—जीवन और उल्लाससे परिपूर्ण भी।

हमारा वर्त्तमान व्यक्तित्व तो मृत्युकी छायासे ढँका हुआ सा है! वह द्वारपालिका ही हमें जीवन और प्रकाशके देशमें ले जाती है, जिसे हम भ्रमवश मृत्युके नामसे अभिहित किया करते हैं।

सचमुच, मृत्युके प्रति मानव-जातिने जितनी घृणा प्रदर्शित की है, उसके सहस्रांशकी भी पात्री वह नहीं! उसकी सुकुमार पगध्वनियां क्रन्दन-ध्वनियां नहीं लातीं,—हर्षके अश्रु कहीं अन्यत्र उत्पन्न करती हैं,—हम अपनी अविवेकिताके कारण उस पावन पर्वको वेदनामय बना डालते हैं!

राजनीति, अर्थनीति प्रभृति विचित्र नीतियोंसे आक्रान्त इस ग्रहके जादू भरे वातावरणमें स्वरूप—विस्मृतिके कारण हम भले ही कितनीही अविवेकितापूर्ण आत्मीयताकी स्थापना क्यों न कर लें, यह द्वारपालिका हमारी आँखें कभी न कभी मुसकराती हुई खोल ही देती है!

लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि मैं आत्महत्याका प्रचारक हूँ! आत्महत्या तो सबसे बड़ी अविवेकिता है! यह कोई आवश्यक नहीं कि

वर्त्तमान शरीरके पिंजड़ेसे मुक्त होनेके बाद हमें इस सौरमण्डलके जादूभरे वातावरणसे भी मुक्ति मिल जाय। शरीर-परित्यागसे ही मुक्ति सम्भव नहीं। सच्ची मुक्ति तो हमारी तभी समझी जायगी जब हम इस सौरमण्डलके विचित्र वातावरणसे अपनेको परे पा सकेंगे! उसके पहले भौतिक शरीरसे विनिर्मुक्त होने पर भी हमारा परित्राण आवश्यक नहीं दीखता!

और यह कौन कह सकता है कि इस शरीरसे मुक्त होनेके बाद हमारी चेतनापर कोई और भीषण आघात नहीं होता हो! वर्त्तमान शरीरमें तो केवल हमारी चेतनाको अवरुद्ध मात्र किया गया है,—उसकी स्वतन्त्रता बन्धनग्रस्त मात्र की गयी है। अतः अपनी वास्तविक स्थितिका और अपने मार्गका ज्ञान हमें इसी जीवनमें प्राप्त करके तब मरणके अंचलकी छायाका स्वागत करना श्रेयस्कर समझना चाहिये!

कारागारमें से भागकर जानेवाले व्यक्तिकी पकड़े जानेपर जो हालत होती है, उसके क्लेशोंमें जो निर्मम वृद्धि की जाती है, आत्महत्या करके इस कारागारसे मुक्त होनेवाले व्यक्तियोंको उसे सदैव स्मरण रखना चाहिए।

पागलखानेका पागल तभी वहांसे बाहर निकल सकता है, जब वह अपनेको और अपने सम्बन्धियोंको पहचानने योग्य हो जाय,—जब उसका उन्माद जनित विस्मरण दूर हो जाय! इसके पहले यदि वह भागकर जाता है तो यह भागना उसके लिये हितकर सिद्ध कदापि नहीं हो सकता! इसमें उसका अकल्याण ही है।

हमें वर्त्तमान जीवनमें रहते हुए ही ज्ञानकी दीपमालाएँ प्रज्वलित करके अपने को, अपने साथियोंको और अपनी राहको पहचानना होगा।

ऐसी अवस्थामें हमारे समक्ष जो प्रश्न सबसे अधिक प्रज्वलित रूपमें उपस्थित होता है, वह यही है कि अन्य ग्रहोंसे हमारे पास सन्देश प्रभृति आते हैं या नहीं !—हमारे कल्याण-पथको प्रशस्त करनेका प्रयास अन्य ग्रहोंपर हो रहा है या नहीं !—या हमें अपनी ही क्षुद्र शक्तियोंके बलपर इस विचित्र सागरका सन्तरण करना पड़ेगा ?

अधिकसंख्यक व्यक्तियोंके लिये ता इस प्रश्नका कोई महत्त्व ही नहीं है और न उनके मस्तिष्कको ऐसे प्रश्नोंका सामना ही करना पड़ता होगा, क्योंकि इस ग्रहके अधिकसंख्यक अधिवासी उन पदार्थोंके अस्तित्वमें तनिक भी विश्वास नहीं रखते, जिनकी अनुभूति उनकी या उनके साथियोंकी ज्ञानेन्द्रियोंको नहीं हो पाती । पारिपार्श्विक वातावरणके उसी स्वरूपको वे सच्चा और पूर्ण मानते हैं, जो उनकी ज्ञानेन्द्रियां उनको प्रदान करती हैं ।

ज्ञानेन्द्रियों पर इतना अधिक विश्वास करना अपने भोलेपनका परिचय देना है। दूरवर्ती स्थानोंके सम्बन्धमें तो कुछ कहना ही निरर्थक है, क्योंकि हमारी ज्ञानेन्द्रियोंकी पहुँच एक निर्धारित सीमा तक ही है। उसके बाद वे अपनी अशक्तिका परिचय देने लगती हैं। लेकिन अपने कार्यक्षेत्रमें भी हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ हमें पदार्थोंके वास्तविक स्वरूपका ही परिचय देती हों, यह कहनेका हमें कोई अधिकार नहीं। साथ ही, यह पूर्ण सम्भव है कि हम अपने परिवेषके सर्वथा नगण्य भागका ही ज्ञान अपनी ज्ञानेन्द्रियोंसे प्राप्त कर पाते हों और उसका महत्त्वपूर्ण भाग अज्ञात ही रह जाता हो!

मैं जिस कमरेमें बैठकर यह पुस्तक लिख रहा हूँ, उसमें मुझे बहुतसी चीजें दिखलायी दे रही हैं। आलमारियाँ हैं। उनमें किताबें भरी हुई हैं। कुर्सियाँ है। मेज है और उसपर कुछ किताबें, कुछ कागजके पन्ने रखे हुए हैं। सुप्रसिद्ध अभिनेत्री सविता देवीका एक फटा हुआ फोटो भी मेजके एक कोनेमें पड़ा है। चौकी है और उसपर बिछौने पड़े हैं। वातायन-पथ उन्मुक्त है और उदित होते हुए मयंककी लज्जारुण छवि सामनेके वृक्षके पत्रोंसे स्पर्शित होती हुई दिखलायी दे जाती है। इसके अतिरिक्त और भी कुछ चीजें हैं, जिनकी स्थितिका मैं अपनी ज्ञानेन्द्रियोंसे अनुभव कर रहा हूँ। मैं यदि यह कहता हूँ कि मेरे कमरेमें ये चीजें विद्यमान हैं तो मैं कोई गलती नहीं करता; किन्तु यदि मैं यह कहूँ कि मेरे कमरेमें बस इतनी ही चीजें हैं तो मेरी यह अनाधिकार चेष्टा होगी। अभी मेरे पास ज्ञानेन्द्रियाँ हैं अर्थात् बाह्य संसारका ज्ञान मेरे मस्तिष्कको प्रदान करनेवाले पाँच साधन हैं। यदि एक दो साधन और बढ़ा दिये जायँ तो मुझे और भी ऐसी चीजोंकी उपस्थितिका ज्ञान हो सकता है, जिनकी कल्पना भी मैं अभी नहीं कर रहा हूँ।

कविके पास ज्ञान-प्राप्तिका एक छठा साधन भी होता है, जिसके कारण उसे उन पदार्थोंके अस्तित्वका ज्ञान होता रहता है, जिनको अन्य प्राणी कदापि नहीं जान पाते। पर्वत-शिखरोंकी सांध्य रक्तिमामें,—प्राचीके प्राभातिक कुंकुम-वर्षणमें,—निशीथकी पथ-नीरवतामें उसे अपने इसी छठे साधनके द्वारा अन्य प्राणियोंके द्वारा अननुभूत वस्तुओंकी अनुभूति होती रहती है।

उस उत्कृष्ट ज्ञान-प्राप्तिके साधनसे वञ्चित अन्य मानव अपनी संख्या अधिक होनेके कारण कविकी बातोंपर विश्वास नहीं करते। वे उसे पागल और स्वप्नलोक-निवासी समझने लगते हैं। और उन लाखोंमें उस एक कविको उन्हीं भर्त्सनाओंका पात्र बनना पड़ता है, जो लाखों अंधोंमें एक आँखवालेको नसीब होती हैं। अन्धे अपनी संख्याकी अधिकताके कारण उस आँखवालेकी ही आँखोंमें विकार बतलाना आरंभ कर देते हैं।

महाकवि शेक्सपीयरकी यह पंक्ति अतिशय सारगर्भित है—'There are more things on heaven and earth Haratio ! than are dreamt in your philosophy !

मानव-जातिका ज्ञान आखिर है ही क्या? वह इस विश्वके सम्बधमें आखिर जानती ही क्या है? इतनी भयानक अज्ञताके रहते हुए भी अदृश्य शक्तियोंपर अविश्वास प्रकट करना एक अक्षंम्य धृष्ठता और अबौद्धिकतापूर्ण दाम्भिकता है।

इस अध्यायके आरंभमें मैंने जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर अधिक-संख्यक विचारक यही देंगे कि मानव-जातिको अन्य ग्रहोंसे किसी प्रकारकी भी सहायता नहीं प्राप्त हो रही है। उसने जो कुछ उन्नति की है, अपने

ही बलपर की है! अपने ही अक्लान्त उद्योगसे वह गिरती पड़ती वर्त्तमान स्थानतक पहुँच पायी है और भविष्यमें भी उसे अपने ही बलपर विश्वास रखते हुए उन्नतिपथमें कदम आगे बढ़ाना पड़ेगा।

सचमुच, क्या इस विराट विश्वमें दुर्भाग्यग्रसित मानवोंकी सहायता करनेवाला कोई भी नहीं है! क्या साराका सारा विश्व इस ग्रहके निवासियोंके प्रति इतना निर्दय हो गया है!

वर्त्तमान युगके एक सुमहान् दार्शनिक कलाकार मॉरिस मेटरलिंकने कई वर्ष पहले The Isolation of Man नामक एक लेखमें लिखा था कि यह तो संभव है कि अन्य ग्रहोंमें इस ग्रहकी अपेक्षा कहीं अधिक सभ्य एवं सुसंस्कृत जातियाँ निवास करती हों, किन्तु यह विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता कि उनके द्वारा मानव-जातिको किसी प्रकारका भी संकेत अस्पष्ट रूपमें भी मिला हो,—साहाय्य या स्पष्ट संकेतों की तो बात ही दूर रही! किन्तु उसके बाद The Magic of the Stars में उन्होंने अपने पूर्वलिखित सिद्धान्तोंकी निस्सारताको स्पष्ट कर दिया है।

उन्हें भी बादमें इस बातपर जोर देना पड़ा है कि यह असंभव नहीं कि हमारी पृथ्वीकी समस्त सुमहान् प्रगतियां अन्य लोकोंके साहाय्यसे ही सम्पन्न हुई हों। मानव-जातिके ऐतिहासिक ज्ञानकी क्षुद्रतापर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है—'And it is by no means impossible that the grandiose affirmations of the early religions, affirmations that have never been surpassed, were in effect the flickering remains of a revelation that had come from the stars, come once and once

only. It is not impossible that all we know, all we have, all that so clearly divides us from the animals and the plants, is due to this ancient intervention; that to what still remains of it we owe all that is best in our life. Old legends seem to hint at this, and they hide great truths."

लेकिन उसके बाद उनका आना बन्द क्यों हो गया? इस हतभाग्य ग्रहपर एक ही बार दया-दृष्टि क्यों हुई?

इसके कई कारणोंपर श्री मेटरलिंकने प्रकाश डाला है। हो सकता है, हमारे और उनके काल—निर्धारणमें महान् अन्तर विद्यमान हो। हो सकता है, हमारे लिये जो एक वर्षका या एक शताब्दीका समय होता है, वह वहां एक मिनट या एक घंटा समझा जाता हो। और इसीलिये उनके द्वारा भेजी गयी सहायता हमारे लिये तो लाखों वर्ष पुरानी हो गयी, किन्तु उन्हें उसे भेजे हुए केवल एक ही घंटा हुआ हो। या यह भी हो सकता है कि हमारे ग्रहसे सम्बन्ध-स्थापनाका प्रयास तो उन्होंने किया हो, किन्तु इससे किसी प्रकारका प्रत्युत्तर न पाकर उनकी इच्छा अनिच्छामें परिणत हो गयी हो। या यह भी हो सकता है कि सन्देश या साहाय्य-प्रेषणकी असुविधा हो गयी हो—हमारे या उनके ग्रहको आवेष्टित करने वाले ईथरकी लहरोंमें किसी-प्रकारका परिवर्तन होजानेके कारण। या यह भी होसकता है कि जिस ग्रहसे हमारी इस गहनतम अन्धकारामें सन्देश आये थे, वह अपने अस्तित्वकी अन्तिम सीमापर पहुँचकर अब निर्वाणोन्मुख हो रहा हो और ऐसी अवस्थामें उसे अपनी सुरक्षाकी अधिक चिन्ता हो रही होगी। अन्य ग्रहोंसे सम्बन्ध-

स्थापनाकी लालसा ऐसी अवस्थामें कैसे जीवित रह सकती है, जब जीवन स्वयं ही मरणके रक्तलिप्त तप्त ओष्ठाधरसे चुम्बित हो रहा हो। या यह भी हो सकता है कि हमारे आजसे हजारों वर्ष पहलेके पूर्वज उन दूरागत संदेशोंको समझनेकी क्षमता रखते थे, इसीलिये उनके पास वे सन्देश आते भी रहते थे, लेकिन हमलोगोंने वह शक्ति खो दी हो, और इसीलिये किसी प्रकारके सन्देश हमतक आते भी नहीं। या यह भी हो सकता है कि वे हमसे सम्बन्ध-स्थापना करनेके लिये उत्सुक न हों। विभिन्न ग्रहोंका मनोविज्ञान विभिन्न होना चाहिये। वहाँकी विचार-धारा और वहाँके आदर्श कुछ दूसरे ही होंगे और वह उत्कट जिज्ञासा-वृत्ति जो इस ग्रहके समस्त प्राणियोंमें भी केवल मानवोंमें ही दृष्टिगत होती है, उनमें नाममात्रको भी न हो!

श्री मेटरलिंक महोदयके ये अनुमान उनकी अनुमान-शक्तिके एवं उनके मस्तिष्ककी उर्वरताके द्योतक अवश्य हैं, किन्तु इन अनुमानोंका आधार उतना सशक्त नहीं। इस ग्रहसे सम्बन्ध-स्थापनाका प्रयास करनेके लिये इस विश्वमें एक या दो ही ग्रह तो नहीं हैं! कोटिशः ऐसे ग्रह भरे पड़े हैं, जिनमें सुसंस्कृत अधिवासियोंके अस्तित्वको उन्होंने सुविख्यात ज्योतिर्विज्ञानविद् एडिंक्टनके यह कहनेपर भी स्वीकार किया है कि हमारा यह सौरमण्डल इस विश्वमें अपवादस्वरूप ही माना जाना चाहिये, क्योंकि अन्तरिक्ष-पथमें कहीं भी तारोंका ऐसा बहिर्भवन नहीं देखा गया है। कहीं भी यह नहीं पायागया है कि एक तारेसे कतिपय ग्रह निकलकर उसकी परिक्रमा कर रहे हों। और आकाशके एक तिहाई तारे संयुक्त हैं, और हमारा यह सौरमण्डल—इसके ग्रह, उपग्रह और तापमान प्रभृति इस विश्वमें एक अपूर्व घटना है!•••••••जब कोटि-कोटि ग्रह जीवनधारियोंसे परिपूर्ण

हैं तो उनमेंसे कमसे कम डेढ़ दो सौ ग्रहोंका ध्यान तो इस ओर जाना चाहिये था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वैसी अवस्थामें कौन किसकी ओर ध्यान देता है! ग्रहोंकी संख्या कम होती (जिसकी संभावना बिल्कुल नहीं है) तब तो शायद इस ग्रह की ओर औरोंका भी ध्यान शीघ्र ही चला जाता, लेकिन इतने-इतने ग्रह भरे पड़े हैं कि इस ग्रह तक उनका ध्यान ही आकर्षित नहीं हो पाता! ग्राम-निवासी एक दूसरे को जल्दी ही पहचान लेते हैं और एक दूसरे के सुख-दुःखमें भाग लेनेको सर्वदा समुद्यत भी रहते हैं, क्योंकि संख्यामें वे अल्प होते हैं, किन्तु कलकत्ता, लंदन या न्यूयार्क प्रभृति नगरोंमें यह सर्वथा असंभव है! दुर्भाग्यवश या सौभाग्यवश यह विश्व नगरसे ही उपमित हो सकता है,ग्रामसे नहीं। लेकिन विशेषता होनेसे चाहे नगर हो चाहे महानगर, व्यक्ति विख्यात हो ही जाता है। महानगरोंमें निवास करनेवाले कतिपय व्यक्ति तो ऐसे होते हैं कि उन्हें उन महानगरोंके समस्त निवासी ही नहीं, बल्कि इस ग्रहके समस्त अधिवासी जानते हैं। इसका कारण उनकी विशेषताएँ ही हैं। इस दृष्टिसे हमारे इस सौरमण्डलको भी विश्व-विख्यात होना चाहिये। भारतके रहने वाले यहाँके समस्त नगरोंके नामसे भले ही परिचित न हों, किन्तु अण्ड-मनके नामसे अपरिचित बहुत कम मिलेंगे। हमारा यह सौरमण्डल सारेके सारे विश्वसे बहुत दूर जिस स्थितिमें पड़ा हुआ है, उसे देखते हुए तो इसको भी विश्व-विख्यात हो जाना चाहिये।

जो हो, मानवी विचारोंके सम्बन्धमें इधर वैज्ञानिकोंके द्वारा जो अनुसंधान हुए हैं और जो नवीन बातें ज्ञात हुई हैं,उनके प्रकाशमें हमें यह विश्वास करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि अन्य ग्रहोंसे हमारी सहायता नानाविध रूपोंमें हो रही है।

हो सकता है, वे सहायताएँ छिप-छिपकर होती हैं—सर्वथा गुप्त रीतिसे। और इसीलिये उनकी संख्या और मात्रामें यह न्यूनता है। कारागारमें प्रकट रूपसे या अधिक मात्रामें सहायता देनेका आदेश क्या इसी ग्रहपर कहीं है?

हो सकता है, वे सहायताएँ गुप्त रीतिसे नहीं होती हों, क्योंकि ऐसा सोचना विश्वकी रूपरेखाके साथ अन्याय करना होगा, यद्यपि इसमें कोई अनौचित्य नहीं दीखता। लेकिन उन सहायताओंकी अल्पतासे हमें उनपर अविश्वास नहीं करना चाहिये। किसी भी कारागारमें सहायता बाहरसे अल्प मात्रामें ही पहुँचायी जा सकती है।

ये सहायताएँ कैसे आती है, किस रूपमें आती है और हम किन उपायोंका अवलम्बन करके इनसे अधिकाधिक लाभ उठा सकेंगे,—इस सम्बन्धमें विचार करनेके पहले अपने वर्त्तमान द्वीप-विश्वकी एक झाँकी पा लेनी आवश्यक है।

—०—

यह विश्व कैसा है, इसका ज्ञान प्राप्त करनेके पहले इस सौरमण्डलका ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है, क्योंकि एक-एक सीढ़ीपर पैर रखकर आगे बढ़नेवाला व्यक्ति उसकी अपेक्षा अधिक आरामके साथ कोठेपर जा सकता है जो बीचकी पाँच-पाँच सात-सात सीढ़ियोंको छोड़ता हुआ ऊपर पैर रखता है, क्योंकि उसके सफल होनेकी संभावना उतनी नहीं, जितनी गिरने की।

किन्तु जब इस सौर मण्डलकी ओर हम दृगपात करते हैं तो आश्चर्य, विह्वलता और प्राणप्रकम्पनकारी विस्मयोंसे हमारे मन-प्राण अभिभूत हो उठते हैं और हम कुछ भी निश्चय नहीं कर पाते कि आखिर वास्तविकता क्या है! अपनी असमर्थताओंपर और प्राणप्रकम्पनकारिणी विवशताओंपर हम विक्षुब्ध हो उठते हैं! बड़ी वेदना होने लगती है।

अभी तक हमें अपने सौरमण्डलमें जितने ग्रहोंका पता लगा है, उनकी संख्या नौ है। हो सकता है, दो एक और हों, किन्तु इसकी सम्भावना नहीं

के बराबर ही है। इन ग्रहोंके अस्तित्वका ज्ञान तो हमें उपलब्ध हो गया है, लेकिन उसके बाद कदम आगे बढ़ानेमें हम असमर्थ हो रहे हैं। दूरवीक्षण-यंत्रोंसे उनका निरीक्षण करके उनकी रूप-रेखाका निर्धारण जिन अनुमानोंके बलपर किया जा रहा है, वे कितने अधकचरे हैं, यह तो शक्तिशाली दूरवीक्षणयंत्रोंका आविष्करण ही बता सकता है।

सर जेम्स जींसके सिद्धान्तानुसार हमारे इस सौरमण्डलका अधिपति सूर्य हमारे ग्रहसे करीब ९२,९००,००० मीलकी दूरीपर है। इसको ४०० से भाग देनेसे जो भागफल होता है, उतनी ही दूरी पर हमारे व्योम-पथको पूर्णिमामें ज्योतित करनेवाला चकोरप्रिय सुधांशु है। सुधांशुके सम्बन्धमें अभी तक हमें अपने दूरवीक्षणयंत्रोंसे जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उससे तो यही निष्कर्ष निकाला गया है कि इस लोकमें वातावरण नामकी कोई चीज नहीं है और इसीलिये वर्षा, मेघ, कुज्झटिका प्रभृतिकी भी तनिक सम्भावना नहीं होनी चाहिये। समुद्र, झील या सरिताओंका भी एकान्त अभाव चन्द्रलोकमें हमारे अनुमानोंके द्वारा सिद्ध होता है। जब जल और वातावरणका वहाँ अभाव है तो जीवनका वह स्वरूप भी वहां कैसे हो सकता है, जो हमारे इस ग्रहपर है! जल और वायुके अभावमें हमारा जीवन कितनी देरतक मृत्युके आलिंगनसे बचा रह सकता है!

चन्द्रलोक प्रशान्त ज्वालामुखियोंसे भरा पड़ा है। इसके एक भागमें अत्यधिक गर्मी पड़ती है और दूसरे भागमें अत्यधिक शीतलता रहती है। सूर्याभिमुख भागका तापमान खौलते हुए पानीके तापमानसे ३२ डिगरी अधिक होनेकी सम्भावना है और दूसरे भागमें शून्यसे २४४ डिगरी नीचेका तापमान हो सकता है। ऐसी परिस्थितियोंमें वहां प्राणी कैसे निवास कर सकते हैं, यह

प्रश्न स्वभावतः हमारे समक्ष उपस्थित होता है और हमें यह निर्णय कर लेना पड़ता है कि वर्तमान परिस्थियोंको देखते हुए तो इस लोकमें चेतन व्यक्तियों का निवास असंभव सा है। सर जेम्स जींस एवं वर्तमान युगके अन्य ख्यात-नामा ज्योतिर्वेत्ताओंने यही निष्कर्ष निकालते हुए चन्द्रलोकको मृतग्रहके नाम से अभिहित किया है। वहां कोई निवास नहीं करता। स्मशानके निशीथका सा भयानक सन्नाटा वहाँ छाया रहता है,—वहां, जहांसे हमारे इस ग्रहतक सुषमामयी उन्मादकारिणी ज्योत्सना प्रवाहित होती है।

सूर्यके सम्बन्धमें तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। उतने उत्तप्त स्थानमें,—ज्वालाके उस ताण्डव-नृत्य-स्थलमें,जहां हमारे ग्रहके समान १,३००,००० ग्रह सन्निविष्ट कर दिये जा सकते हैं, प्राणियोंके अस्तित्वकी संभावना ही कैसे हो सकती है इस विराट विश्वके बिरह-पीड़ित अन्तर्देशके एक अंगारेके समान दिख-लायीदेनेवाले इस लोकमें जीवनके अस्तित्वकी कल्पना ही कैसे की जा सकती है! इसके चारो ओर परिक्रमा देनेवाले जो नौ ग्रह हैं, उनका प्रकाश या उत्ताप सूर्यका ही है; स्वतन्त्र किसीका भी नहीं है। दूरवीक्षण यंत्रोंने हमें यह ईमानदारीके साथ बताया है। अतएव जो ग्रह सूर्यके जितना समीप होगा वहां उतनी ही उष्णता होगी और जो जितनी ही दूर होगा वहाँ उतनी ही शीतलता। इस तरह हमारी इस पृथ्वीके बाहर जो ग्रह हैं, वे अपेक्षाकृत अधिक शीतल होंगे। प्लूटो, नेपट्यून, यूरैनस, सैटर्न सभी अत्यधिक शीतल हैं। जूपीटरको तो इन सबोंसे आधक शीतल होना चाहिये,—इतना शीतल कि इस ग्रहका कोई मानव वहां पहुंचे तो पहुंचते ही हिमकणोंके रूपमें परिवर्तित हो जाय।

जो हो, तीन ही बातें हो सकती हैं। या तो हमारे सौर मण्डलके अन्य

समस्त ग्रहोंमें जीवन है, या केवल हमारी पृथ्वीपर ही जीवन है, और शेष समस्त ग्रहोंमें एक व्यापक सन्नाटा सा छाया हो या हमारी पृथ्वीके साथ ही साथ दो चार अन्य ग्रहोंमें भी जीवनकी संभावना हो सकती है !

यदि मंगल प्रभृति ग्रहोंमें जीवन है, तब तो इतना निःसंशय माना जा सकता है कि उनकी प्रगति हमारे ग्रहसे अधिक हो गयी होगी और वैज्ञानिक आविष्कारोंमें भी वे हमसे कुछ आगे ही होंगे। हो सकता है, वे अपने दूर-वीक्षण यंत्रोंसे जो हमारे दूरवीक्षण यंत्रोंसे कहीं अधिक शक्तिशाली हैं, हमारे ग्रहका और हमारे कार्यकलापका सम्यक् निरीक्षण कर रहे हों। हो सकता है, वे हमारे क्लेशोंके प्रणाशकी चेष्टाओंमें भी संलग्न हो रहे हों। हो सकता है, वे इस ग्रह तक आनेके प्रयासोंमें भी लगे हुए हों।

किन्तु यदि हमारे ग्रहके अतिरिक्त इस सौर मण्डलमें अन्यत्र कहीं भी जीवन नहीं है, तब तो हमारा सौर मण्डल वास्तवमें उस भीषण निर्जन प्रदेश के समान है, जहां सैकड़ों मीलों तक आदमियोंका कोई चिह्न नहीं; केवल एक स्थानपर नन्हें-नन्हें कुछ झोंपड़े बने हुए हैं ! और यदि कतिपय ग्रहोंमें जीवन का समुद्भव होकर फिर नष्ट हो गया हो तो हम श्मशानोंके प्रतिवेशी बनकर क्या यहां नहीं रह रहे हैं ?

* * * *

अब यहां एक बात विचारणीय है। जो ग्रह हमारी पृथ्वीकी अपेक्षा सूर्यसे अधिक दूरीपर अवस्थित हैं, वे सदासे तो इतने शीतल रहे नहीं होंगे। जिस समय हमारी पृथ्वीपर अग्नि-ताण्डव हो रहा होगा, उस समय उन ग्रहों पर सभ्यताओंके विकास-चिह्न दिखलायी दे रहे होंगे, क्योंकि सूर्यसे अधिक

दूरीपर रहनेके कारण उनमें जो शीतलता इस समय आ गयी है, वह उनकी भीतरी गर्मीके द्वारा अपाकृत हो गयी होगी और हमारे ग्रहपर आज जो तापमान है, वह कुछ लाख वर्ष पूर्व वहाँ रहा होगा। ऐसी अवस्थामें क्या यह नहीं कहा जा सकता कि हमारी पृथ्वीपर जीवनका समुद्भव होनेके पहले ही उन ग्रहोंने जीवनके रंगीन दृश्य देख लिये होंगे, जिन्हें आज हम उनकी अत्यधिक शीतलताके कारण जीवनधारणके अनुपयुक्त समझते हैं ?

और इसके साथही साथ क्या यह भी नहीं सोचा जा सकता कि जिनके द्वारा वे ग्रह भरे पड़े थे, वे उनके जीवनधारणके अनुपयुक्त होनेपर इस पृथ्वीपर चले आये ? इस ग्रहपर जीवनका समुद्भव कैसे हुआ, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर देनेमें अभीतक मानव-जातिका कोई भी शक्तिशाली मस्तिष्क समर्थ नहीं हो पाया है। इसी पृथ्वीके विभिन्न तत्त्वोंके मिश्रणसे जीवनका समुद्भव हो गया है, यह मानना सर्वथा निराधार है क्योंकि आजतक किसी भी वैज्ञानिककी प्रयोगशालामें कतिपय तत्त्वोंके व्यामिश्रणसे जीवनका समुद्भव नहीं किया जा सका। गंदे स्थानोंमें स्वतः जीवनका समुद्भव होता हुआ देखकर ऐसा अनुमान करना स्वाभाविक है। गंदी नालियोंमें कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। गन्दे कमरोंमें या गन्दे पलंगोंमें खटमलोंकी भरमार हो जाती है। लेकिन इधरके वैज्ञानिक अन्वेषणोंसे यह प्रमाणित हो गया है कि उन गंदे स्थानोंमें भी जीवनका कोई न कोई रूप पहलेसे विद्यमान था, तभी वहां जीवनके एक नये रूपका समुद्भव हो सका। ऐसी अवस्थामें यह प्रश्न उत्तरहीन ही रह जाता है कि आखिर इस ग्रहपर जीवनका आविर्भाव कैसे हो गया।

क्या यह संभव नहीं कि उन अत्यधिक शीतल एवं जावन धारणके

अनुपयुक्त हो जाने वाले ग्रहोंसे इस पृथ्वीपर जीवनका अवतरण हुआ हो?

लेकिन, यह उत्तर स्वयं एक नये प्रश्नका रूप ग्रहण कर लेता है कि फिर वहां जीवनका प्रादुर्भाव कैसे हो गया!

जो हो, इस सौरमण्डलके सम्बन्धमें हमारा जो ज्ञान है, वह इसी सिद्धान्तकी पुष्टि करता है कि हमारे इस सौरमण्डलमें अन्यत्र कहीं भी जीवन नहीं है! मृतक ग्रहोंके साथ हमारा यह ग्रह सूर्यके चारों ओर परिक्रमा दे रहा है! एक श्मशानलोक तो यामिनीमें नग्न चक्षुओंसे स्पष्ट ही दिखलायी देता है, शेष भी श्मशानलोक ही हैं। मङ्गल ग्रहमें जोकि हमारा निकटतम प्रतिवेशी है, शायद जीवन हो, किन्तु संभावना वहां भी कम ही दीखती है। मंगल ग्रहमें जीवन है, यह अभी केवल अनुमानपर ही आधारित है, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध कहां हो सके हैं!

तब?

क्या हमारा यह सौरमण्डल एक भयंकर रेगिस्तान है, जहाँ हमारी यह पृथ्वी ही ओएसिसका काम कर रही है? चन्द्रलोक निर्जीव निकला; बुद्ध, शनि, मंगल प्रभृति भी जीवनधारणके सर्वथा अनुपयुक्त निकले! हम यदि किसी तरह वायुयानोंके द्वारा अपने सौरमण्डलके अन्यान्य ग्रहोंकी यात्रा करनेमें समर्थ भी हो गये तो वहाँ जाकर करेंगे क्या? क्या वहाँ की हिमकणिकाओंसे बातें करेंगे या प्रशान्त ज्वालामुखियोंकी राखोंसे विचारोंका आदान प्रदान करेंगे?

सर जेन्स जींसने—The stars in their courses में एक स्थानपर लिखा है—"On the whole, the case for life existing on



Mars, or on any other planet in the solar system, can hardly be called a strong one, and, although there is still room for much difference of opinion, it seems to me most likely that the life which exists on our earth is the only life in the sun's family although other stars far out in space may include inhabited planets in their families."

लेकिन हमारा यह सोचना कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता !

बलपूर्वक तो हम यह भी नहीं कह सकते कि इस सौरमण्डलके अन्य ग्रहोंकी वैसी ही स्थिति है, जैसी हमारे दूरवीक्षणयंत्रोंसे दिखलायी देती है। हमारे दूरवीक्षण यंत्र अभी अत्यन्त आरंभिक स्थितिमें हैं और जबतक उनमें पर्याप्त सुधार नहीं हो जाता है, तबतक किसी प्रकारके निष्कर्ष निकालकर उन्हें अविसंवादित और अकाट्य मान लेना सर्वथा भ्रामक है। आजसे कुछ दशाब्दी पहलेके ज्योतिर्विज्ञानवेत्ताओंके सिद्धान्तोंकी नूतन गवेषणाओं और निरीक्षणोंके प्रकाशमें जो दयनीय अवस्था हुई है, उसीसे मिलती जुलती अवस्था वर्त्तमान सिद्धान्तोंकी भी उस समय हो सकती है, जब कि हमारे परम अधिक शक्तिशाली दूरवीक्षण यंत्र हो जायंगे। वर्त्तमान परिस्थितियोंमें केवल निरीक्षणके बलपर ही किसी बातको सर्वथा सत्य मान लेना भ्रम एवं अज्ञानको आमंत्रित करना है।

जीवनको और जगत्को अभी हम समझही क्या पाये हैं। जीवनके जिसस्वरूपको हम इस ग्रहपर देखरहे हैं, वही अन्य ग्रहोंपर भी दृष्टिगत हो, यह सर्वथा अविवेकितापूर्ण अनुमान है। हो सकता है, वहाँ जीवनके दूसरे ही स्वरूप हों,—वे स्वरूप, जिनके लिये वहाँकी अत्यधिक शीतलता या अत्यधिक उत्ताप कोई महत्त्व न रखते हों। हमारे वर्त्तमान भौतिक आवरणको जिस प्रकारके तापमानकी आवश्यकता है, उसी प्रकारके तापमानमें अन्य भौतिक आवरण भी जीवित रह सकते हों, यह कहनेका हमें क्या अधिकार है?

सच्ची बात तो यह है कि अभी अपने सौरमण्डलके ही सम्बन्धमें हमारा ज्ञान बहुत अपूर्ण है। निश्चयपूर्वक विज्ञान कुछ भी नही कह सकता। फिर भी विज्ञानवेत्ताओंके अनवरत प्रयास निष्फल नहीं होंगे। उनकी तपस्या निरर्थक नहीं सिद्ध होगी, क्योंकि किसी प्रकारकी भी तपस्या आजतक निरर्थक नहीं हुई है। जिस प्रकार अपनी अक्लान्त साधनाके द्वारा विज्ञानने बहुतसे रहस्योंका उद्घाटन किया है, उसी प्रकार यदि वह साधनालीन रहा तो अनेकानेक ऐसे रहस्यों का भी समुद्घाटन संभव है, जो इस ग्रहके निवासियों की विचार-धारामें ही क्रान्तिकारी परिवर्त्तन कर देंगे।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि मानवजातिकी साम्प्रतिक विचार-धाराका जो आधार है, वह सर्वथा भ्रामक तो है ही, साथ-ही-साथ सर्वथा अहितकर भी। उसके पथका अन्धकार अभी तक ज्योतिर्मय देवताका आवाहन नहीं कर सका है, इसका भी यही कारण है। हमारा दृष्टिकोण इतना धूमिल और आभाहीन है कि हम अपने, परायेकी भी पहचान नहीं कर सकते! सत्यकी खोजमें हम निकलते हैं और असत्यको पाकर कृतकृत्य हो उठते हैं!

हमें अपनी गलतियाँ आँखें खोलकर देखनी होंगी और अपने मार्गविरोधोंको निर्मम बनकर कुचलना होगा। जिस वातावरणमें हम साँसें ले रहे हैं, वही छलनाओं और प्रवञ्चनाओंसे भरा पड़ा है। हमें कदम-कदमपर सम्हलना है और राह पहचानते हुए चलना हैं, अन्यथा मंजिलतक पहुँचना तो दूर रहा, हमारी अवस्था उनसे भी अधिक शोचनीय हो जायगी, जो अभी मार्गके आरम्भमें ही खड़े-खड़े प्राणोंमें बल बटोरनेका प्रयास कर रहे हैं।

हमारी मंजिलतक जो राह जाती है, वह सीधी नहीं। हर दस कदमपर उसकी शाखाएँ दिखलायी देती हैं और उनमेंसे किसी एकको आगे बढ़नेके लिये चुनना पड़ता है। यह चुनाव पर्याप्त सावधानी और बौद्धिक तेजस्विताके साथ होना चाहिये, अन्यथा मार्ग-विस्मरणकी ही सम्भावना अधिक है।

जो हो, इतना सुनिश्चित है कि हम जिस लोकमें इस समय हैं, वह हमारे योग्य बिल्कुल नहीं। हमारी आँखोंके आगे घोर अन्धकार छाया हुआ है और हम विकल बनकर किसीका आवाहन कर रहे हैं।

विज्ञान हमारी सहायताके लिये आता है और हमें उसने ज्योति प्रदान भी की है, किन्तु केवल उसीका हाथ पकड़कर आगे बढ़ना सर्वथा विघातक है। अणु और परमाणुओंतक पहुँचकर विज्ञान भी शायद अब वही राह पकड़ रहा है, जिस राहने आजसे कुछ शताब्दी पूर्व भारतवर्षके कतिपय चिन्तनशील व्यक्तियोंको पकड़ा था और अद्वैतवादी बना दिया था!

विज्ञानने हमारा कम उपकार नहीं किया है। हमारे पथ में यदि विज्ञानकी किरणें नहीं आतीं तो शायद हमारा अन्धकार आजकी अपेक्षा सहस्रगुणित सघन रहा होता। विगत दो सहस्र वर्षोंतक इस ग्रहपर जो जीवनचर्या रही है, वह कितनी मूर्खतापूर्ण और अन्धविश्वासोंसे लबरेज थी, यह इतिहा-

सवेत्ता अच्छी तरह जानते हैं। ज्ञान-प्राप्तिके विविध द्वारोंका उन्मोचन विज्ञान के ही शक्तिशाली हाथोंके द्वारा हो सका है। हमारे बन्धन सहस्रों हैं, लेकिन विज्ञान उनमेंसे अनेकोंको छिन्नभिन्न करनेमें समर्थ नहीं हो सका है, ऐसा हम नहीं कह सकते।

लेकिन, इसीलिये हम आँखें मूँदकर विज्ञानका अनुगमन भी नहीं कर सकते! हो सकता है, हमारे-पथ पर प्रकाश विकीर्ण करता-करता विज्ञान स्वयं अपना मार्ग खो बैठे। आजतक उसने जो कुछ प्राप्त किया है, सब मिथ्या सिद्ध हो जाये और लज्जित होकर विज्ञान स्वयं इस बातकी घोषणा करदे कि मैं सत्यतक पहुँचनेमें और अपने अनुगतोंको वहाँ तक पहुंचानेमें असमर्थ हूँ। और इस समय अपनेको विजयी समझनेवाले विज्ञानवेत्ता भी अपने अणुओं, परमाणुओं और विद्युत्कणोंके सिद्धान्तोंकी निस्सारतापर अश्रु आविल चक्षुओंसे विचार करते हुए खोयी मंजिल तक पहुंचानेके लिये किसी दूसरेको आह्वान करने लगें!

इस समय तो विश्वके रहस्योंके सम्बन्धमें विज्ञानको जो ज्ञान उपलब्ध हो सका है, वह सर्वथा नगण्य है। हाँ, यह असंभव नहीं कि कोई शक्ति,—वह इस ग्रह की हो या इस सौरमण्डलसे दूर किसी दूसरे ग्रहसे आयी हुई हो, विज्ञानको पथहारा होनेसे बचा ले!

———

इतने-इतने प्रतिरोधोंके रहते हुए भी हमें कम से कम इस बातकी प्रसन्नता होनी चाहिये कि हमारा यह रैनबसेरा वेनस या जूपीटरपर नहीं हुआ, अन्यथा हमारे सामने जो कठिनाइयाँ उपस्थित होतीं, वे हमीं जानते।

वेनस और जूपीटर मेघमालाओंसे इस तरह आवरित है कि वहाँसे बाहर की कोई भी चीज शायद ही कभी दिखलायी देती होगी। यदि हमारा यह रैनबसेरा भी इसी प्रकार चारों ओर से बादलोंसे ढँका रहता तो सूर्य-प्रकाश तो हमें उपलब्ध हो जाता और दिवा-निशाके गमनागममें भी कोई बाधा नहीं उपस्थित होती, लेकिन हम शायद हीं यह जान पाते कि यह विश्व कितना विराट है और उसमें हमारे वर्त्तमान वासस्थलका, जिसके विचित्र-विचित्र वर्णन यहाँके विभिन्न धर्मशास्त्रोंमें देखनेको मिलते हैं, इस सृष्टिमें क्या स्थान है।

वेनस और जूपीटरके सम्बन्धमें हम जो कुछ जान पाये हैं उससे तो यही विदित होता है कि हमारा वर्त्तमान वासस्थल उनसे कहीं अच्छा है—वे दोनों ग्रह तो इससे भी अधिक कठोर कारागार हुए होते।

कौन कह सकता है कि इस दूरवर्त्ती सौरमण्डलमें, जो हमारे लिये परिस्थितियों और भाग्यके फेरसे निकटतम बन गया है, वे दोनों ग्रह इस ग्रहकी अपेक्षा अधिक हाहाकारभरे कारागार न हों!

लेकिन, सौभाग्यवश हमारी पृथ्वीका वातावरण स्वच्छ है—पारदर्शक है और इसीलिये हम नानाविध बन्धनोंमें जकड़े रहनेपर भी कमसे कम इस विराट विश्वके एक अंशको तो देख सकते हैं और उन्हें अमावसकी तिमिराकीर्ण विभावरीमें देख-देखकर अपने बन्दी प्राणोंको आश्वस्त कर सकते हैं।

इधर कुछ दशाब्दियोंके भीतर उत्साही एवं प्राणसम्पन्न व्यक्तियोंके द्वारा इस बातकी प्रचेष्टाएँ हुई हैं कि बेलूनों या वायुयानोंके द्वारा अन्य ग्रहोंकी भी यात्राएँ की जा सकें। इस विषयपर पाश्चात्य भाषाओंमें कतिपय पुस्तकें भी लिखी गयी हैं, जिनमें The dawn of Interplanetary travel नामक पुस्तक प्रख्यात हो चुकी है।

आखिर वह कौन सी शक्ति है, जो हमें इस ग्रहसे बाँधे हुए है! क्यों नहीं हम उड़कर चन्द्रलोकमें या मङ्गल ग्रहमें जा पहुँचते हैं! आखिर सीधे भी तो हम चलते हैं, फिर उसी तरह हम ऊपरकी ओर क्यों नहीं चल पाते? इसका उत्तर यही है कि इस पृथ्वीकी आकर्षण शक्ति हमें ऐसा नहीं करने देती। यह शक्ति ही हमें पृथ्वीपर खींच लाती है। यह शक्ति क्या है, यह वैज्ञानिक जगत् नहीं जान सका है, किन्तु यह है इसका ज्ञान कतिपय शताब्दी पहले ही हो गया था। जिस प्रकार विद्युत्के सम्बन्धमें मानव-जातिका

ज्ञान कुछ भी नहीं है, किन्तु नानाविध प्रयोगोंके उपरान्त अब उसके द्वारा बहुत-से कार्य सम्पन्न करने योग्य क्षमता मानव-जातिने प्राप्त कर ली है, उसी प्रकार, हो सकता है, ग्रहों की इस आकर्षण-शक्ति पर कुछ अंशोंमें अधिकारकी स्थापना कर ली जाय। मारिस मेटरलिंकने इस सम्बन्धमें एक स्थान पर लिखा है —"........As we have governed electricity, harnessed it, isolated and enchained it, though we know it not, similarly we may govern gravitation and shall cut the current thal binds us to carth and will wander from world to world" अर्थात् जिस प्रकार हमलोगोंने विद्युत् को बन्धनग्रस्त, विविक्त और अधिकृत किया है, यद्यपि हम इसके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते, उसी प्रकार हम आकर्षण-शक्ति को अधिकृत करके इस पृथ्वीके बन्धन को विच्छिन्न करनेमें भी समर्थ हो सकते हैं और तब विभिन्न संसारोंका परिभ्रमण करेंगे।

आइंस्टीनने विद्युत्शक्तिमें और गुरुत्वाकर्षण शक्तिमें अत्यधिक साम्य दिखलाया है और इस बातपर प्रकाश डाला है कि ये दोनों समान नियमोंके ही वशवर्त्ती हैं। इस राद्धान्तकी सत्यताको सम्भव मानते हुए श्री मेटरलिंक महोदयने इस ग्रहके बन्धनोंसे विमुक्त होकर लोक-लोक भ्रमण करनेकी जो कल्पना की है, उसकी विमोहकतासे इन्कार नहीं किया जा सकता, किन्तु तर्ककी कसौटी पर वह खरी नहीं उतरती। गुरुत्वाकर्षण-शक्तिके कुछ अंशोंपर अधिकारकी स्थापना करके हम अन्य संसारों तक पहुँच सकते हैं, लेकिन हमारा भौतिक परिधान उन संसारोंके वातावरणमें क्या सुरक्षित रह सकेगा? अभी तक अपने सौरमण्डलके ही अन्य ग्रहोंके वातावरणके सम्बन्ध

में ज्योतिर्विज्ञानवेत्ताओंको जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उससे तो यही मालूम होता है कि हमारा वर्त्तमान भौतिक आच्छादन उन ग्रहोंमें कदापि सुरक्षित नहीं रह सकता। इसे इस ग्रहकी ही वायुकी आवश्यकता है,—इसी ग्रहके विशिष्ट तापमानमें यह जीवित रह सकता है। यहाँका जल और यहाँका भोजन इसके अस्तित्वके लिये अत्यावश्यक है! गुरुत्वाकर्षण-शक्तिको अधिकृत करके यदि हम अन्य ग्रहों तक जाने योग्य हो गये, तब तो फिर कहना ही क्या है! किन्तु हमारा भौतिक आच्छादन वहाँ अधिक समय तक हमारा साथ शायद ही दे सके! अतएव वर्त्तमान शरीरको धारण किये हुए विभिन्न ग्रहोंकी यात्रा करना सम्भवपर नहीं दीखता। यहाँसे हम अपने साथ कितनी वायु, कितना जल और कितना भोजन ले जायँगे! और हमारा यह अपर्याप्त पाथेय कब तक हमारा साथ दे सकेगा!

बन्धनग्रस्त हम हैं, इसमें तो कोई सन्देह है ही नहीं। इतनी-इतनी विवशताओंसे आक्रान्त रहते हुए भी यदि हम अपनेको बन्दी नहीं मानते हैं, तो यह हमारी चिन्ता-धाराके वैचित्र्यका ही परिचायक होगा। केवल गुरुत्वाकर्षणको अधिकृत कर लेनेसे ही हम इस ग्रहके बन्धनोंसे विमुक्त होकर अन्य लोकों तक जानेमें समर्थ हो सकेंगे, यह विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता। गुरुत्वाकर्षणका नियम तो सारे विश्वमें विद्यमान है। यदि हम अपनी बन्धन-विमुक्तिको गुरुत्वाकर्षणसे सम्बद्ध करते हैं तो साराका सारा विश्व एक विचित्र विवशतासे आक्रान्त दिखलायी देने लगता है और यह असम्भव है। सारा का सारा विश्व हमारे वर्त्तमान वासस्थलकी तरह हाहाकार और चीत्कारोंका अग्नि-पुञ्ज नहीं हो सकता।

जो विज्ञानवेत्ता आत्माके अस्तित्वको नहीं मानते, लेकिन यह मानते हैं

कि हमारे सौरमण्डलकी भाँति अन्य तारे भी गूहोंसे युक्त हैं और हमारे गूहकी ही तरह वहाँ भो जीवनोद्भव हो गया है, उनके सामने तो श्रोमेटर लिंककी इस युक्तिसे एक अभिनव प्रश्न उपस्थित हो जाता है। इस गूहपर जीवनका समुद्भव हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ। केवल कुछ लाख वर्ष व्यतीत हुए हैं। किन्तु अन्य सौरमण्डलके गूहों पर तो जीवनका समुद्भव हुए पर्याप्त समय हो गया होगा और इसलिये उनमें से कुछ गूहोंके अधि-वासी तो ज्ञानकी विभिन्न शाखाओंमें इतना आगे बढ़ गये होंगे कि इस गूहके विज्ञानवेत्ता उतनी कल्पना भी नहीं कर सकते! ऐसी अवस्थामें क्या यह सम्भव नहीं कि उन्होंने गुरुत्वाकर्षण-शक्ति पर अधिकारकी स्थापना कर ली हो? फिर वे क्यों नहीं हमारे गूहतक आनेका कष्ट करते हैं?

इससे स्पष्ट हो जाता है कि गुरुत्वाकर्षणके अतिरिक्त भी कोई ऐसा बन्धन है, जो इस गूहकी सीमाके बाहर न तो हमें जाने देता है और न अन्यलोकोंके निवासियोंको ही आने देता है। इस विवशताकी आंशिक अनुभूति भारतवर्षके प्राचीन महर्षियोंको हुई थी और इसीलिये उन्होंने मुक्ति के लिये प्रयास करना अपने इहलौकिक जीवनका परम कर्त्तव्य समझा था। गुरुत्वाकर्षण-शक्तिका प्रभाव हमारे भौतिक आवरणपर अवश्य है, किन्तु हमारा वास्तविक व्यक्तित्व भी उसके द्वारा प्रभावित होता हो, यह विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता। यदि गुरुत्वाकर्षण-शक्तिके कारण ही हम इस गूहमें बन्दी-जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तब तो मृत्युके उपरान्त इस बन्दी-जीवनकी समाप्ति स्वयमेव हो जाने चाहिये, क्योंकि तब यह भौतिक आवरण तो हमसे विमुक्त हो जाता है। किन्तु जब ऐसा नहीं होता, तब हमें यही मानना पड़ेगा कि गुरुत्वाकर्षणके अतिरिक्त एक ऐसा बन्धन भी है, जिसको विच्छिन्न किये बिना हमारा निस्तार असम्भव है।

यह बन्धन कौन-सा है, इसका ज्ञान प्राप्त करना हमारे पथकी प्रशस्तिके लिये अनिवार्य है। जबतक हम उसके स्वरूपसे अभिज्ञ नहीं हो जाते, तब तक उससे छुटकारा पानेके लिये हम प्रयास ही क्या करेंगे!

जहाँ तक इस सम्बन्धमें विचार किया गया है, ज्ञान ही मुक्तिका एक-मात्र उपाय प्रतीत होता है। भारतवर्षके उन महामहिम एकान्तसेवी ऋषियों ने भी 'ऋतेज्ञानान्न मुक्ति' की उच्च स्वरसे घोषणा की थी।

हम इस ग्रहके विचित्र वातावरणमें उस मदपायीकी सी अवस्थामें हैं, जो नशेमें चूर होकर लड़खड़ा रहा है और जिसका मार्ग खो गया है। उसे जैसे भी हो, अपना मार्ग पाना है, तभी उसका कल्याण है। और मार्गकी प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती, जब तक वारुणी-जनित अज्ञानका निराकरण न हो जाय!

हमें अपना मार्ग पाना है! इस वर्त्तमान व्यामोह को दूर करके अपने मार्गकी निर्वापित दीपमाला पुनः प्रज्वलित करनी है! हमें इस ग्रहके मिथ्या सुखोपभोगों एवं विलासिताको ठुकराते हुए अपना कार्य करना है! हमारी साधना तभी सफल हो सकेगी, जब हमारी रातें और हमारे दिन हमारे अनवरत परिश्रमके साक्षी बन सकेंगे। प्रासादोंके नृत्य-मुखर कक्ष हमारे लिये नहीं है और न वैभव-विलासके अन्य साधन हो। हमारे लिये तो तमाकीर्ण यामिनीकी रवहीन घड़ियां हैं और गंभीर चिन्तन है।

—*—

(८)

मरुस्थलीके अन्धकारित निशीथमें अपने कारवाँसे बिछुड़ कर रोनेवाले यात्रियोंकी तरह आज हमारी भी अवस्था है ।

हमारी मार्ग-रेखा न जाने कहाँ लुप्त हो गयी है ! अंधड़ और बवण्डर आते हैं ; हमें पीड़ित करके हँहराते हुए चले जाते हैं ! क्या जाने कितने मध्याह्नोंके उत्तप्त सिकता-कणोंने हमारे पथ-श्रम-जर्जर नग्न चरणोंको तपाया है ! क्या जाने कितने प्रभातोंने हमारी नैश जागरणसे उमगी हुई आँखें देखी हैं ? न जाने कितनी ही बार उत्तप्त समीरण अत्यधिक रोदनके कारण सूजी हुई हमारी बरौनियों से टकराया है ! क्या जाने कितनी बार प्रकाशके शोणितसे यामिनीका स्वागत करने वाली संध्याओंने हमें श्रम-क्लान्त होकर सिकता-राशि पर मूर्च्छित होते हुए देखा है !

हमें राह कहाँ मिलेगी ? हमारी वह निर्वापित दीप-शिखा कैसे प्रज्वलित हो सकेगी ?

चारों ओर अज्ञान और अशक्तिका अन्धकार छाया हुआ है। हमारा रोम-रोम उन किरणोंके लिये क्रन्दन कर रहा है, जो हमें वह मार्ग दिखला सकेंगी, जिसपर चलकर हम इस नशीले और प्रवञ्चनामय वातावरणसे बाहर निकल कर सुखकी साँस ले सकेंगे !

यदि हम केवल अपनी ही शक्तियोंपर भरोसा रखकर उन किरणोंका आवाहन करते हैं, तब तो हमें सफलताकी सम्भावना नहीं के बराबर ही दीखती है। पग-पग पर हमें इस बातका अनुभव हो रहा है कि हमने कल जिसे सत्य माना है, वह आज असत्यवत् प्रतीत हो रहा है। कल जिसकी सुन्दरतापर हम रीझे बैठे थे, वह आज असुन्दरताका लीला-निकेतन-सा मालूम हो रहा है। ज्यों-ज्यों हम मरण-द्वारके समीप पहुँच रहे हैं, त्यों-त्यों हमें अपनी साम्प्रतिक असामर्थ्यकी वेदनाप्रद प्रतीति हो रही है।

लेकिन हमें निराश नहीं होना चाहिये। हमें इस नशीले वातावरणसे मुक्त करनेके प्रयास अन्यत्र भी हो रहे हैं। अन्य लोकोंके निवासियोंकी दृष्टि हमारे ऊपर लगी हुई है। हमें सहायता करनेका पूर्ण प्रयास हो रहा है।

प्रश्न होता है, वे किस प्रकार हमारी सहायता कर रहे हैं ? हमें तो उनके सन्देशोंकी कोई प्रतीति नहीं होती। इस ग्रहके ऊपर कभी भी कोई दूरागत आवाज नहीं गूँजी। या किसी दूरस्थ लोकसे आयी हुई कोई हस्ती कभी भी नहीं दिखलायी दी। फिर हम कैसे मान लें कि हमारे पास अन्य लोकोंसे संदेश पहुँच रहे हैं,—हमारे हृदयको नूतन बल प्रदान करनेवाली प्रेरणाएँ सदैव आ रही हैं। न हम उन्हें देखते हैं; न सुनते हैं; न हमें उनका अनुभव ही होता है। हम जो कुछ सोचते हैं, अपने मस्तिष्कसे सोचते हैं। अपनी समुन्नतिके लिये हम जो योजनाएँ बनाते हैं, उनमें हमारे ऐहिक

जीवनके अनुभवोंका एवं हमारी निर्णयात्मक शक्तियोंका ही सर्वप्रधान हाथ रहता है। कदम-कदमपर हमें अपनी ही आँखोंको खोलकर चलना पड़ता है। दूरागत शक्तियाँ हमारी सहायता कहाँ कर रही हैं ? हमने अपने परिश्रमसे वायुयानोंका आविष्करण किया। हमने अपने ही अदम्य उद्योग एवं प्राणमय उत्साहसे रेडियो निकाला। यह हमारी ही सतत साधनाका फल है कि हम दूरवर्ती तारोंके रूप-रंगका अध्ययन करने योग्य हो गये हैं। अपनी पृथ्वीके सम्बन्धमें, अपने सौरमण्डलके अन्यान्य ग्रहोंके सम्बन्धमें, पूर्णिमा-निशीथमें मदिरा-वितरण करनेवाले मयंकके सम्बन्धमें हम जो कुछ भी जान सके हैं, अपने ही प्रयत्नोंसे जान सके हैं। कभी भी हमें किसी अदृश्य शक्तिकी सहायताकी प्रतीति नहीं हुई। हमारी गवेषणाशाला या वेधशालामें कभी भी कोई सन्देश प्रतिध्वनित नहीं हुआ। हमारे सामने हमारी राह है। हम उसपर अपनी ही शक्तियोंसे चल रहे हैं। गिरते हैं तो कोई शक्ति हमें उठाने नहीं आती, हमारे आंसू नहीं पोंछती और उठते हैं तो कोई हमें आगेकी राह नहीं बताने आती।

लेकिन, इसपर गंभीरतापूर्वक विचार करनेकी आवश्यकता है। क्या यह सत्य है कि मानव-जातिने आज तक जो कुछ किया है, अपनी ही शक्तियोंसे किया है ? उसकी समस्त उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियाँ,—उसके समस्त सुमहान वैज्ञानिक आविष्करण उसीके मस्तिष्कसे सम्भूत हुए हैं ? विगत दो तीन शताब्दियोंमें उसने जो कुछ आलोक पाया है, अपनी ही बौद्धिक शक्तियोंके द्वारा पाया है ? क्या आजसे कई हजार वर्ष पहले यूनानने जो चमकते हुए दिन देखे थे, वे उस समयके यूनानियोंकी अक्लान्त कर्म-साधनासे ही आहूत हो सके थे ? क्या गीताकालीन भारतवर्षने जो

ज्ञान प्राप्त किया था, उसमें अन्य लोकोंकी सहायता तनिक भी नहीं मिली थी ? अलेक्जेंड्रिया और ईजिप्तके जीवनकालने क्या केवल पार्थिव साँसोंकी ही अनुभूति की थी ? क्या उनको सुरभित करनेके लिये अदृश्य लोकोंसे सौरभ-प्रवाह नहीं हुआ था ?

नहीं,—कदापि नहीं हुआ था। सारा का सारा चिन्तनशील समुदाय यही उत्तर देगा कि अतीतकालीन सभ्यताओंने या वर्तमान युगने जो कुछ उन्नति की है, अपने ही प्रयासोंसे की है ! जितनी भी नन्हीं-नन्हीं किरणें मानव-जातिके जीवन-पथपर बिखर सकी हैं, सब मानव-जातिके ही अदम्य उद्योगोंसे।

किन्तु ऐसा मानना हमारी कृतघ्नताका ही नहीं, हमारी अबौद्धिकताका भी परिचायक है। मानव-जातिने जब-जब अन्य लोकोंसे आये हुए संकेतोंको ग्रहण किया है, तब-तब अत्यल्प कालमें ही उसकी सुमहान प्रगति हुई है। विगत दो सहस्र वर्षोंमें इस ग्रहके अधिवासियोंने क्या किया ? इन दो सहस्र वर्षोंके इतिवृत्तकी सत्यताको तो असांशयिक होकर स्वीकार किया जा सकता है। मानव-जातिकी कितनी उन्नति इस सुदीर्घ समयमें हुई ? भ्रान्तिपर आधारित धर्मोंके प्रचारके लिये और साम्राज्य-विस्तृतिके लिये किये गये युद्धोंसे सारा-का सारा इतिहास भरा पड़ा है। किन्तु विगत तीन-चार शताब्दियोंमें एकाएक इतनी अधिक उन्नति हो गयी है कि यदि आज शाह-जहाँ या जहांगीर आये तो आकाश-पथमें उड़ते हुए वायुयानोंको देखकर विस्मयसे सिहर उठे ! हजारों मीलकी दूरी पर गाये हुए गीतको ज्यों-का त्यों और उसी समय सुनकर शायद वह विश्वास नहीं करेगा कि वह फिर उसी दुनियामें आया है, जहाँ कुछ शताब्दी पहले वह शाहंशाह था। पर्देपर

नृत्य करती हुई और गीत गाती हुई तसबीरोंको देखकर शायद वह पागल हो जायेगा !

क्या यह सम्भव है कि जो लड़का पहली कक्षासे लेकर मैट्रिक तक सदैव दो-दो तीन-तीन बार अनुत्तीर्ण होकर पहुँच सका हो, वह एकाएक मैट्रिककी परीक्षामें सर्वप्रथम निकले—सारी की सारी युनिवर्सिटीमें। अपनी शक्तियोंके बलपर वह ऐसा करनेमें समर्थ हो सका है, यह विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता। अवश्य यही मानना पड़ेगा कि उसे किसी परीक्षकके द्वारा या किसी परीक्षार्थीके द्वारा परीक्षा-भवनमें सहायता प्राप्त हुई है।

मैं समझता हूँ, मानव-जातिकी साम्प्रतिक समुन्नतिके कारणपर प्रकाश डालनेके लिये यह एक उदाहरण पर्याप्त है। युनिवर्सिटीमें प्रथम आनेके बाद जब अन्य कार्योंमें वह अपनी अयोग्यताका परिचय देने लगेगा,—एक चिट्ठीमें दस-दस बीस-बीस गलतियाँ करने लगेगा,—औरंगजेबको सन् ५७ के गदरसे सम्बद्ध करने लगेगा और सन् ५७ के गदरमें रजिया बेगमकी पगध्वनि सुनने लगेगा, उस समय लोगोंको केवल आश्चर्य ही होकर नहीं रह जायगा, बल्कि वे स्पष्ट रूपमें इस बातको मानने लगेंगे कि अवश्य यह किसी दूसरेकी सहायतासे परीक्षामें इतनी शानके साथ उत्तीर्ण हो सका है !.......मैं पूछता हूँ, मानव-जातिके साथ और क्या हो रहा है ? आजसे कई हजार वर्ष पहले मानव-जातिने कुछ समयके लिये आश्चर्यजनक प्रगति दिखलायी,—उसकी उन्नति अतिशय शीघ्रतापूर्वक हुई, लेकिन उसके बाद फिर वही सहस्रों वर्षोंका मूर्खतापूर्ण इतिहास ! मिश्रकी प्राचीन सभ्यता असाधारण थी और उस समय वहांके निवासियोंने अप्रतिम प्रगतिका परिचय दिया था, लेकिन उसके बाद उनकी भी बौद्धिक प्रकाशधारा न जाने कहाँ लुप्त हो

गयी ! गीताकालीन भारतवर्षमें साधारण उन्नति नहीं हुई थी। जिस समय गीताका निर्माण करने वाले महामहिम व्यक्तिका जन्म हुआ था, वह समय भी साधारण नहीं कहा जा सकता। वाल्डेनके विश्व-विख्यात लेखक थारोने तो स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार किया है कि यद्यपि गीताको लिखने वाले देवताको हुए हजारों वर्ष बीत गये, लेकिन फिर भी वैसा सुमहान् ग्रन्थरत्न पुनर्वार नहीं लिखा गया। वह युग वर्त्तमान युगसे कम नहीं रहा होगा। लेकिन फिर वह आलोक-धारा कहाँ खो जाती है ! क्यों नहीं मानव-जातिके कदम आगे बढ़ते हैं ?—क्यों नहीं वह द्विगुणित शौर्य और शक्तिके साथ उन्नति-पथ पर चलती है ? एकाएक आश्चर्यजनक प्रगति दिखलाकर फिर वही सहस्राब्दियोंकी मूर्छना छा जाती है,—फिर वही अबौद्धिकतापूर्ण असभ्य और असंस्कृत कार्य-कलाप चारों ओर दृष्टिगत होने लगते है। इसका क्या कारण है ? विकासवादी इसका क्या उत्तर देते हैं ?

अतीतकालीन उन्नतिके उपरान्त सहस्राब्दियों तक अपनी अज्ञानताका परिचय देते रहनेके उपरान्त फिर विगत कतिपय शताब्दियोंसे यह जो सुमहान् उन्नति हो रही है,—रेडियो, वायुयान, सिनेमा प्रभृति दृष्टिगत हो रहे हैं,—मानवजातिके शक्तिशाली मस्तिष्क अन्तरिक्ष-पथके तारकोंके निकट पहुँचनेके प्रयासमें दत्तावधान हो रहे हैं,—जाति, धर्म और राष्ट्रकी मूर्खता-पूर्ण सीमाओंका बन्धन नष्ट करके विश्व-ब्रह्माण्डके सम्बन्धमें विचार करने लगे हैं, इसके कारणोंपर क्या किसीने गम्भीरतापूर्वक विचार करनेका कष्ट किया है ?

क्या हमें इसमें अन्य अदृश्य शक्तियोंके द्वारा प्रदत्त सहायताका क्षीणतम आभास भी नहीं मिल पाता ?

अदृश्य शक्तियोंसे,—अन्य ग्रहोंके निवासियोंसे हमें सहायता प्राप्त हो रही है ! उनके सन्देश सदैव इस ग्रह तक आया करते हैं ! यदि हम उनके इशारोंको ठीक तरहसे समझते हुए आगे कदम बढ़ायें तो हमारी उन्नतिका पथ अत्यल्प-कालमें प्रशस्त हो सकता है !

* * * *

हमारी प्रगतिका एक उत्कृष्ट साधन है हमारा मस्तिष्क, जिसके निर्माणमें इस सौरमण्डलकी संचालिका-शक्तिने अपनी निर्माण-कलाकी पराकाष्ठा दिखला दी है ।

मानव-जातिने अपने मस्तिष्कका अध्ययन विगत दशाब्दियोंमें ही वर्त्तमान युगमें आरंभ किया है । इसके पहले इस ओर विचारकोंका ध्यान ही नहीं गया था । बाह्य संसारके सम्बन्धमें पर्याप्त विचिकित्सा हुई, किन्तु मानव-जातिके सर्वप्रधान अंग मस्तिष्कको ओर किसीका ध्यान ही नहीं गया ।

हर्षकी बात है कि अब इस ओर मानव-जातिके शक्तिशाली मस्तिष्कोंका ध्यान जा रहा है और विज्ञानसम्मत प्रणालीसे इसका अध्ययन आरम्भ हो गया है ।

पाषाणों, वृक्षों और इसी प्रकारकी अन्य बाह्य वस्तुओंके सम्बन्धमें मानवी ज्ञान जितना है, उसका सहस्रांश भी उस यन्त्रके सम्बन्धमें नहीं है, जिससे इन वस्तुओंका ज्ञान होता है ! कौन-सी मानसिक क्रिया कौनसे विशिष्ट भागसे संचालित होती है, इस सम्बन्धमें मनोविज्ञानवेत्ताओंका ज्ञान अत्यल्प है । ज्ञानवाहिनी शिराओंके क्रिया-कलापसे भी अभी तक विज्ञानवेत्ता अच्छी प्रकारसे अभिज्ञ नहीं हो पाये हैं ।

मानव-जातिके शक्तिशाली मस्तिष्कोंने बाह्य संसारकी चीजोंके सम्बन्धमें अभिज्ञता प्राप्त करनेके लिये जितने प्रयास किये, उतने भी अपने मस्तिष्कको

पहचाननेके लिये नहीं। इसी कारण विज्ञानकी अन्य शाखाओंमें जो विकास मानव-जातिने किया है, उसे देखते हुए मनोविज्ञानका विकास सर्वथा नगण्य प्रतीत होता है।

वैसे इस विज्ञानका आरम्भ तो कई हजार वर्ष पहले ही हो गया था। यूनानके दार्शनिकोंने और भारतके ऋषियोंने मानवी चित्त-वृत्तियों और विचारोंके सम्बन्धमें ज्ञानार्जनको पर्याप्त उत्कण्ठा दिखलायी थी, लेकिन उसके बाद इसको अग्रगतिका पथ प्रशस्त नहीं हो पाया—बंधुर और कण्टकाकीर्ण ही रहा। इसके अनेक कारणोंमें एक कारण यह भी है कि मनुष्य अत्यधिक उन्नत मानसिक स्थितिमें पहुंचे बिना अपने विषयमें सोचनेकी आवश्यकता ही नहीं महसूस करता। साथ ही मानव-जातिको अपने शरीरकी सुरक्षाके लिये बाह्य जगत्के विभिन्न उपादानोंकी अभिज्ञता अधिक उपयुक्त प्रतीत हुई, साथ ही अधिक सरल भी।

लेकिन वर्त्तमान कालमें विज्ञानकी अन्य शाखाओंने अपनी उन्नतिके द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं कि यदि मानव-जाति अपने विचार-यंत्रको उपेक्षित रखेगी तो उसका ह्रास अवश्यम्भावी है, फलतः मानव-जातिको सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों रूपोंमें समझनेके वर्त्तमान शताब्दीके विचारकोंके द्वारा प्रयास हो रहे हैं और मानवी मस्तिष्कके सम्बन्धमें नवीन किरणोंका आगमन होता चला जा रहा है।

लेकिन यहाँ एक कठिनाई यह है कि हम मानवी मस्तिष्कके सम्बन्धमें और उसकी क्रियाओंके सम्बन्धमें कोई आविष्कार करके निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते। विज्ञानकी अन्य शाखाओंमें एक अंश तक हम अपनी निश्चयात्मकताको प्रश्रय दे सकते हैं; लेकिन यहाँ यह सम्भव नहीं। इसीलिये

इस पथमें हमें बहुत सम्हल-सम्हल कर चलना पड़ेगा और अपनी प्रत्येक गलतीके साथ काफी निष्ठुरताका परिचय देना पड़ेगा; तभी हम अपने उस यंत्रको जिसके द्वारा हम अपने जीवनका सर्वोत्कृष्ट और सबसे अधिक आश्चर्यजनक कार्य संपादित करते हैं, समझनेमें समर्थ हो सकेंगे।

मनोविज्ञानको आजकलके मनोवैज्ञानिकोंने आचरण-विज्ञान कहना आरंभ किया है। क्योंकि जबतक उन्हें इस बातका निश्चय नहीं हो जायगा कि वास्तवमें मानवी चेतना क्या है,—शरीरसे परे उसका कोई अस्तित्व है या नहीं, तबतक वे कैसे उसकी सत्ताके सम्बन्धमें अन्वेषण कर सकते हैं!



किन्तु मस्तिष्कको ही समस्त मानसिक क्रियाओंका समुद्भावक मानना नितान्त भ्रामक है। हमारी कल्पनाएं, हमारी सौन्दर्यात्मक भावनाएं, हमारी स्मृतियाँ, हमारी आशाएँ-आकांक्षाएँ सबोंके उद्भव-स्थान मस्तिष्क के ही विभिन्न भाग हैं, यह सिद्धान्त सर्वथा अमान्य है।

मस्तिष्क एक यंत्र है और अतिशय विचित्र यंत्र, इसमें भी कोई सन्देह नहीं। किन्तु परिचालकके अभावमें यंत्र स्वतः कार्यकर नहीं हो सकता। मस्तिष्कका भी परिचालन होता है और वह परिचालिका शक्ति सर्वथा अभौतिक है। मस्तिष्ककी सबलता एवं सशक्तता वांछनीय है, क्योंकि तभी परिचालिका शक्ति इससे अपना कार्य अच्छी तरह ले सकती है, लेकिन इसीलिये यह कहना कि मस्तिष्क ही सब कुछ है और परिचालिकाका स्वतंत्र अस्तित्व सर्वथा अनावश्यक है, क्योंकि मस्तिष्ककी अस्वस्थावस्थामें मानसिक क्रियाओंमें व्याघात पहुँचता है, सर्वथा अतार्किकताका द्योतक है। अच्छी-से-अच्छी कार ड्राइवरके अभावमें नहीं चल सकती, इसमें कोई संदेह नहीं; साथ ही इसमें

भी कोई संदेह नहीं कि अच्छा-से-अच्छा ड्राइवर कारके खराब हो जाने पर उसे नहीं चला सकता। कार भी अच्छी हो और ड्राइवर भी अच्छा हो, तभी यात्रा भी अच्छी हो सकती है, अन्यथा पथमें न जाने कितने-कितने स्थानों पर रुकना पड़ेगा। कहीं कारका कोई भाग खराब हो जायगा तो कहीं ड्राइवरके सिरमें ही पीड़ा होने लगेगी।

जीवन-यात्रामें भी ड्राइवर और कारकी स्वस्थता अत्यावश्यक है। मस्तिष्कमें विकार होनेसे भी कठिनाइयोंका आगमन अवश्यम्भावी है और मस्तिष्कके सञ्चालकके अस्वस्थ होने पर भी।

अनेकानेक वैज्ञानिकोंका यह विश्वास है कि मस्तिष्करूपी इस भौतिक यंत्रके द्वारा ही समस्त मानसिक क्रिया-कलाप सम्पादित होते हैं, किन्तु यह बात केवल विवादग्रस्त हो नहीं, सर्वथा निराधार-सी प्रतीत होती है। अनेकानेक बौद्धिक क्रियाएँ इस भौतिक यंत्रके द्वारा किसी संचालकके बिना ही सम्पन्न होती हैं, यह नहीं माना जा सकता। मस्तिष्कके सम्बन्धमें अब तक जो कुछ ज्ञान विज्ञानवेत्ताओंने प्राप्त किया है, उसके बलपर यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि समस्त मानसिक क्रियाएँ इस भौतिक यंत्रके द्वारा ही सम्पन्न हो जाती हैं।

इस अभौतिक सञ्चालिका-शक्तिका इस भौतिक यंत्रसे क्या सम्बन्ध है, यह प्रश्न भी उपेक्षणीय नहीं। वैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों दोनोंने इस सम्बन्धमें काफी ऊहापोह किया है और विभिन्न निष्कर्षों पर पहुँचे हैं।

बाह्य और स्थूल दृष्टिसे देखने पर तो यही प्रतीत होता है कि शरीरका हमारी बुद्धि पर अधिक प्रभाव है। विभिन्न वातावरणोंमें हमारी विचारधारा भी विभिन्न रूप ग्रहण करती है, क्योंकि शरीरपर पारिपार्श्विक वाता-

-वरणका साधारण प्रभाव नहीं पड़ता। अत्यधिक शीतल स्थानोंमें और अत्य-धिक उत्तप्त स्थानोंमें जिस जिस प्रकारकी मनः स्थितियाँ होती है, उनमें साधा-रण अन्तर नहीं होता। क्षुधाग्रस्त अवस्थामें और पूर्ण परितृप्त अवस्थामें जो विभिन्न विचार-धाराएँ उत्पन्न होती हैं, वे भी इसी पर प्रकाश डालती हैं कि शरीरका हमारे मनपर पर्याप्त अधिकार है। मदिरा-पानसे मनकी जो स्थिति हो जाती है, वह सर्वविदित है । शरीरकी किसी हड्डी पर चोट लगनेसे मानसिक स्थिति किस प्रकारकी हो जाती है, इस पर आलोक निक्षिप्त करनेकी आवश्यकता नहीं। ज्वराक्रान्त स्थितिमें और शरीरकी स्वस्थ अवस्थामें जो मानसिक क्रियाएँ होती हैं, उनमें पर्याप्त अन्तर होता है।

इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि हमारी बुद्धि और हमारा मन शारीरिक-क्रियाओंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। शारीरिक स्थितियोंका मनः स्थितियों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कल्पना कीजिये, आप सरिता-तटपर बैठे हैं और प्राभातिक कनक-किरणोंके वीचि-विचुम्बित नृत्यको देखते हुए भाव-विभोर हो रहे हैं। आप अतिशय सुन्दर कल्पनाओंके साथ अपने मनको क्रीड़ा करते हुए भी पा रहे हैं। एकाएक वृक्षकी एक जर्जर शाखा टूटकर आपके सिर पर गिर पड़ती है और जोरोंकी चोट लगती है! ऐसी अवस्थामें आपकी वे कोमल कल्ति कल्पनाएँ तो दूर रहीं, आपकी चेतना भी शायद कुछ समयके लिये आपका साथ छोड़ देगी। मस्तिष्कके कतिपय केन्द्रोंतक रक्तवाहिनी शिराओंके द्वारा रक्त ले जानेकी क्रियाको बन्द करनेसे भी चैतन्यहीनता आ जाती है।

इस सम्बन्धमें अधिक प्रकाश डालना निरर्थक है। मनपर शरीरका जो प्रभाव पड़ता है, उसको खण्डित करनेका दुस्साहस कोई नहीं कर सकता।

एक चिकित्सकने एक व्यक्तिकी नाड़ीका स्पन्दन प्रति मिनट परिवर्तित करके देखा, तो उसकी मनः स्थितियोंमें भी महान् परिवर्त्तन पाया। प्रति मिनट जब रोगीकी नाड़ीका स्पन्दन ५० या ६० की संख्या तक था, वह शान्त और विमनस्क-सा रहा। ४० की संख्या तक आ जाने पर वह अर्धमृत-सा हो गया; ५० तक आने पर अतिशय उदास; ७० तक आने पर आपेसे बाहर हो गया और जब नाड़ीके स्पन्दनकी गति प्रतिमिनट ६० के हिसाबसे कर दी गयी, तब तो पूछना ही क्या था! पागलोंकी तरह, अशान्त, विक्षिप्तोंकी तरह आचरण होने लगा।

ज्वराक्रान्त व्यक्तियोंकी मनःस्थितिका निरीक्षण करनेसे यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है।

लेकिन, जिस प्रकार शरीरका प्रभाव मानसिक क्रियाओंपर कम नहीं पड़ता, उसी प्रकार मानसिक क्रियाओंका शरीर पर भी कम प्रभाव नहीं पड़ता। मानसिक आघातोंके द्वारा शरीरकी क्रियाएँ परिवर्त्तित हो जाती हैं। दुःखात्मक सम्वाद पानेपर शारीरिक क्रियाएँ अपरिवर्त्तित नहीं रह पातीं। इसी प्रकार सुखात्मक समाचारोंकी अभिनव अभिज्ञता भी शरीरपर पर्याप्त प्रभाव डालती है। जिस समय एक प्रेमिका अपने चिर वियुक्त प्रेमीके आगमन का सन्देश सुनती है, उस समय उसकी क्षुधा और पिपासा न जाने कहाँ खो जाती है! आनन्द और दुख दोनोंके अतिरेकमें क्षुधा और पिपासाका प्राबल्य कम हो जाता है। इधर तो अनेक चिकित्सकोंने मनके द्वारा ही शारीरिक रोगोंको दूर करनेकी अनेकानेक प्रणालियाँ आविष्कृत की हैं और उन्हें अपने कार्योंमें कुछ अंशोंमें सफलता भी प्राप्त हो रही है।

अत्यधिक दुःखाक्रान्त रहनेवाले व्यक्ति अल्पकालमें ही बलहीन, कृश

एवं अशक्त हो जाते हैं। सदैव चिन्तित एवं खिन्न रहनेवाले व्यक्तियोंका मुख तेज-विरहित हो जाता है। यहाँ तक कि उनकी पाचन-क्रियापर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

इस सम्बन्धमें मुझे एक घटना याद आ रही है। कहाँ पढ़ी थी, यह याद नहीं है। शायद किसी जर्मन लेखककी किताबमें पढ़ी थी। शरीरपर मनके प्रभाव की महत्ता विघोषित करते हुए उसके विद्वान् लेखकने बताया था कि एक फांसीकी सजा पाये हुए अपराधीपर अमेरिकाके कतिपय मनोविज्ञान-वेत्ताओंने प्रयोग करने का निश्चय किया। निश्चित समयपर उसे उस कुर्सीपर बैठा दिया गया, जिसपर बैठा कर अपराधियोंके जीवनकी हाहाकारमयी तमिस्रा को मरणके मंजुल आलोक-स्पर्शसे मुग्ध किया जाता था। जीवन-बंधनसे मुक्त करनेवाले यंत्रसे उसका शरीर स्पर्शित किये बिना ही उन लोगोंने उस अपराधीके हृदयमें इस बातका सुदृढ़ विश्वास उत्पन्न कर दिया कि वह उस मृत्यदाता यंत्रसे स्पर्शित हो रहा है। फलतः उसकी मृत्यु हो गयी। इसी प्रकार एक बार उन लोगोंने एक अपराधी को साधारण तरल पदार्थ पीनेको दिया, लेकिन कतिपय उपायोंसे उसे इस बातका पूर्ण विश्वास करा दिया गया कि वह तरल पदार्थ और कुछ नहीं, विष ही था। परिणाम वही हुआ, जो उस अपराधीका हुआ था। इसकी भी मृत्यु हो गयी।

स्विट मार्सडन या मैकफेन्डन या किसी अन्य अमेरिकन लेखककी किताब का एक और उदाहरण इस सम्बन्धमें याद आ रहा है। नर था, या नारी थी, यह तो स्मरण नहीं। किंतु था कोई मानव-समाजका ही सदस्य, इसमें कोई सन्देह नहीं। एक ज्योतिषीने उसकी निधन-तिथि उसे बतला दी। उस व्यक्तिके मनमें ज्योतिषीके प्रति पूर्ण विश्वास था। परिणाम यह

हुआ कि निर्धारित निधन-तिथिके दिन उसको भी मृत्यु-रूपसीके मृणाल-मसृण अंकमें आत्म निवेदन कर देना पड़ा। यहां, हो सकता है, अधिकांश पाठक मनके विश्वासकी अपेक्षा उस ज्योतिषीके भविष्य-ज्ञानकी शक्तिको अधिक महत्व दें। जो हो, मैं इसे मनका भयाक्रान्त विश्वास समझता हूँ।

शरीरपर मनका कितना विस्मयकर प्रभाव पड़ता है, इस सम्बन्धमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं। मानसिक अवस्थाओंके विभिन्न परिवर्त्तन शरीरके विभिन्न अंशोंको प्रभावित किये बिना नहीं रहते। अत्य-धिक उदास, खिन्न, मलीन रहनेसे—प्राण-प्रदेशमें सदैव निराशाकी सघनश्याम अमावसको आमंत्रित करते रहनेसे रक्त तो विषाक्त हो ही जाता है, साथ ही अन्य शारीरिक क्लेशोंका समुद्भव भी हो जाता है।

इतना तो निश्चित हो चुका कि शरीर हमारे मनको प्रभावित करता है और हमारा मन हमारे शरीरको। इसे दूसरे शब्दोंमें यों कहा जा सकता है, कि हमारा यह भौतिक यंत्र हमारे अभौतिक व्यक्तित्वको प्रभावित करता है और हमारा अभौतिक व्यक्तित्व हमारे इस भौतिक शरीरको, लेकिन आखिर इन दोनोंमें जो सम्बन्ध है, उसका स्वरूप क्या है!

शरीरको हम सर्वथा अप्रधान नहीं मान सकते, क्योंकि शरीरके किसी भी अंगकी विकृति अहितकर सिद्ध होती है। साथ ही शरीरको सर्वथा प्रधानता भी नहीं दी जा सकती। हमारे समस्त क्रिया-कलाप केवल शरीरसे ही सम्पन्न होते हैं, इसका समर्थन कोई भी वैज्ञानिक गवेषणा नहीं कर सकी है!

शरीरमें (इसमें मस्तिष्क भी शामिल है), और हमारी मानसिक क्रियाओंमें स्थापित सम्बन्धोंपर वैज्ञानिकोंने विगत दशाब्दियोंमें काफी

विचार-विमर्श किया है, किन्तु अभीतक वे किसी ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं, जिसे अन्तिम कहा जा सके।

बहुतोंने तो मस्तिष्कको समस्त मानसिक क्रियाओंका समुद्भावक माना है, जैसा कि मैं इस अध्यायके आरम्भमें लिख चुका हूँ। किन्तु मस्तिष्कविज्ञानका समुचित अध्ययन करने पर इसकी निस्सारताका परिचय मिल जाता है। मस्तिष्करूपी यंत्रके उत्कृष्टतम केन्द्रोंके परमाणु-कम्पनोंको ही हमारी समस्त मानसिक-क्रियाओंका वास्तविक स्वरूप कहनेका दुस्साहस कोई वैज्ञानिक नहीं कर सकता।

एक कवि दिनान्तकी तम-धूमिल वनान्त-श्रीको देखकर जिन महामहिम कल्पनाओंके द्वारा अपने क्लेश-जर्जरित पार्थिव अस्तित्वको शृङ्गारित करने लगता है, उन्हें मस्तिष्ककी शिराओंका एक विशिष्ट कम्पन मात्र मानना,—मस्तिष्कके उत्कृष्टतम एवं सूक्ष्मतम भागके अणुओंकी महत्वपूर्ण हिल्लोल मानना सर्वथा निराधार है। अन्तरिक्ष-पथमें बिखरे हुए इन तारकोंको देखकर जिस मोहमयी निर्वास-व्यथासे मन-प्राण भर आते हैं और बार-बार दुखियारे नेत्रोंके सामने किसी खोये हुए रहनुमाकी तेजस्विनी मूर्ति घिर आती है, उसे अत्यधिक उलझे हुए सबल स्नायु-विकम्पन कह कर, यदि मनोविज्ञानवेत्ता यह समझते हैं कि उन्होंने सब कुछ समझ लिया, तो यह सर्वथा हास्यास्पद धारणा है।

अब तो मनोविज्ञानवेत्ताओंको अपनी भूल मालूम हो गयी है और वे मस्तिष्कको ही समस्त मानसिक क्रियाओंका,—कविकी कोमल-कान्त कल्पनाका,—दार्शनिककी तेजस्विनी विचारधाराका समुद्भावक माननेमें अपनेको असमर्थ पाने लगे हैं, लेकिन अभी भी मस्तिष्कको ही सब कुछ माननेवाले व्यक्तियोंकी कमी नहीं।

अमावसके निशीथमें एकाएक जब चिर वियुक्त कविकी नींद उचट जाती है और कोई सुकुमार स्वप्न भंग होता हुआ किसीकी रस-स्निग्ध ज्योतित सुन्दरताको कमरेमें बिखेर देता है, उस समय जो विचार कविके कण-कणको एक विचित्र उत्पीड़नसे भर देता है, उसे सेरीब्रल केन्द्रका परमाणुविशिष्ट परिवर्तन कह कर छुट्टी पाते हुए, मैं समझता हूँ, बड़े-से-बड़े जड़वादीको भी घोर संकोच होगा।

मस्तिष्ककी उत्कृष्टतम केन्द्रवर्तिनी अणु-कणिकाओंके कम्पनोंकी उपज हमारे विचार, हमारी कल्पनाएँ, हमारी स्मृतियाँ हैं, यदि सिद्धान्त अमान्य है, और मस्तिष्कका वैज्ञानिक अध्ययन किसी अंशमें भी इनका समर्थन नहीं करता। अणु-कणिकाओंके कम्पनोंका प्रभाव हमारी मानसिक क्रियाओं पर पड़ता है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु उनसे वे समुद्भूत कदापि नहीं हो सकतीं! अणु-कणिकाओंके कम्पन अणु-कणिकाओंके कम्पन हैं और हमारी मानसिक क्रियाएँ हमारी मानसिक कियाएँ हैं। दोनोंमें पारस्परिक सम्बन्ध है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु अभौतिक मानसिक क्रियाओंका उन भौतिक साधनोंको उत्पादक मानना सर्वथा अविचार्य एवं अमान्य है!

हमारी कल्पनाओंपर, हमारी सौन्दर्यात्मक अनुभूतियोंपर, हमारी स्मृतियोंपर उस भौतिक यंत्रकी अणु-कणिकाओंके विशिष्ट परिवर्तनोंके विशिष्ट प्रभाव पड़ते हैं, केवल इसीसे यदि कोई इस भौतिक यंत्रको ही सब कुछ मानने लगता है तो यह उसकी विचार-शक्तिके दौर्बल्यका ही परिचायक है! हमारे वास्तविक व्यक्तित्वके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है! इस भौतिक जगतकी प्रत्येक वस्तु अपनेसे सम्बद्ध अन्य वस्तुओंको प्रभावित करती है और उनसे प्रभावित होती है! इस सम्बन्धमें अधिक प्रकाश डालना निरर्थक है।

पाठक स्वयं अपने पारिपार्श्विक वातावरणमें इसकी सत्यतासे अभिज्ञ हो सकते हैं। हाइड्रोजन यदि अन्य गैसों पर अपने सम्पर्कसे विशिष्ट प्रभाव डालता है तो अन्य गैसोंके अस्तित्वको ही खण्डित नहीं किया जा सकता।

बाह्य संसारके सम्बन्धमें हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं और उसके उपरान्त स्मृतिके रूपमें जो ज्ञान सुरक्षित होता है और फिर कल्पना-शक्तिके द्वारा जिसे हम नित्य नवीन रूप प्रदान किया करते हैं, उसका सम्बन्ध हमारे स्नायुमण्डलसे एवं मस्तिष्कके यंत्रसे अतिशय घनिष्ट है, इससे किसी अवस्थामें भी इन्कार नहीं किया जा सकता, किन्तु इसके साथ-ही-साथ मानवी स्नायु-मण्डल एवं मस्तिष्क-यंत्रके सम्बन्धमें वैज्ञानिक पद्धतिके द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया गया है, वह उस स्वतंत्र सत्ताका खण्डन भी नहीं करता, जो इन विचित्र कल्पानाओं, विचारों, स्मृतियों प्रभृतिकी उत्पादिका है।

उन्नत बौद्धिक क्रियाओंकी बात तो दूर रही, सामान्यतम क्रियाओंको भी केवल शारीरिक यंत्रसे सम्बद्ध नहीं किया जा सकता।

हमारा जो शाश्वत व्यक्तित्व है, वही समस्त व्यापारोंको संपादित करता है। यह शरीर भी, मस्तिष्क जिसका एक अंग मात्र है, उसका पार्थिव यंत्र है। चित्रकार चित्र बनाता है; उसकी तूलिका नहीं। चित्रकारकी जैसी प्रतिभा होगी,—जैसा अनुभव और शक्तियाँ होंगी, चित्र भी वैसा ही बनेगा लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि तूलिका के खराब हो जानेसे उसके चित्रमें खराबी नहीं आयगी। चित्र-निर्माणके लिये तूलिका आवश्यक है। अकेला चित्रकार क्या कर सकता है। लेकिन महत्व चित्रकारका है, तूलिकाका नहीं। उस चित्रमें तूलिकाका व्यक्तित्व भी प्रतिच्छायित है, लेकिन चित्रकारका व्यक्तित्व उससे सहस्रगुणित अधिक शक्तिशाली रूपमें।

मोटर चल रही है, इसमें मोटर का महत्व नगण्य नहीं है, लेकिन ड्राइवरका महत्व उससे अधिक है। उसकी गतिको बढ़ाना और घटाना ड्राइवरके अधिकारमें है; लेकिन यह देखकर कि मोटर चल रही है, उसके पहिये घूम रहे हैं, इसीलिये मोटर चल रही है,—मोटर ही सब कुछ है, ड्राइवर कुछ नहीं, सर्वथा भ्रांतिपूर्ण सिद्धांत है।



हमारे वास्तविक एवं चिरन्तन व्यक्तित्वमें और इस पार्थिव यन्त्रमें जो घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया है, उसका स्वरूप क्या है, यह प्रश्न अतिशय ज्वलन्त रूपमें अब हमारे सामने उपस्थित होता है।

दोनोंमें जो सम्बन्ध है, वह विगत अध्यायमें स्पष्ट हो चुका है और यह भी स्पष्ट हो चुका है कि वर्त्तमान जीवनमें दोनोंका स्वास्थ्य और दोनोंका विकास एक दूसरेकी अपेक्षा रखता है।

इस सम्बन्धमें अपवाद नहीं है, ऐसी बात नहीं है। कई ऐसे कलाकार हुए हैं जिनकी शारीरिक अस्वस्थता ही उनकी विशिष्ट मानसिक शक्तियोंके उद्‌बोधन का कारण हुई थी। कई व्यक्ति राजयक्ष्मासे आक्रान्त होनेपर विविध सुतीक्ष्ण बौद्धिक शक्तियोंसे समृद्ध हो गये हैं, इस सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंने पर्याप्त प्रकाश डाला है।

जो हो, अब हमें इस सम्बन्धके स्वरूपोंपर विचार करना है।

मैं शरीर और वास्तविक व्यक्तित्वके सम्बन्धके स्वरूपपर अपना विचार प्रकट करनेके पहले कतिपय प्रमुख विचार-धाराओंपर और उनकी निरर्थकताओं पर प्रकाश डालना अत्यावश्यक समझता हूँ।

कुछ दार्शनिकोंने आत्माको (उस अविनाशी तत्वको, जिसे वास्तविक एवं चिरन्तन व्यक्तित्वके नामसे अभिहित करता हूँ) शरीरके एक विशिष्ट भागमें अधिष्ठित माना है। भारतके प्राचीन विचारकोंमें बहुतसे इसी विचार-धाराके पोषक थे। फ्रेंच दार्शनिक दकार्ते भी कशेरु विषयक मांसग्रन्थिमें आत्माकी अवस्थिति मानता था।

साधारण मानव-समाजके अनेकानेक सदस्य आत्माको शरीरके किसी विशिष्ट भागमें ही अधिष्ठित मानते हैं। कोई हृदयमें मानता है, कोई मस्तिष्कमें।

लेकिन, शरीरके किसी विशिष्ट भागमें आत्माको अधिष्ठित मानना तर्कसम्मत नहीं प्रतीत होता। साथ ही मानवी शरीरके सम्बन्धमें अबतक जो वैज्ञानिक ज्ञान-प्राप्ति हुई है, उसका भी इस सिद्धान्तसे मेल नहीं खाता।

Notre Chemin नामक फ्रेंच पुस्तकमें मैं पार्थिव और अपार्थिव व्यक्तित्वके सम्बन्धमें प्रकाश डाल रहा हूँ। यहाँ इतना लिखना पर्याप्त होगा कि हमारा शाश्वत व्यक्तित्व हमारे इस पार्थिव व्यक्तित्वसे वर्तमान अवस्थामें सर्वत्र संश्लिष्ट हो गया है। पार्थिव व्यक्तित्वकी रूपरेखा शाश्वत व्यक्तित्वकी रूपरेखासे बिल्कुल नहीं मिलती है, ऐसी बात भी नहीं हो सकती और बिल्कुल मिलती है यह भी सम्भव नहीं दीखता, लेकिन इतना अवश्य मान लिया जा सकता है कि चिरन्तन व्यक्तित्वके अनुसार ही पार्थिव व्यक्तित्वका निर्माण भी होगा। जैसा शरीर होता है, वैसे ही कपड़े दर्जी तैयार करता है;—उसी

नापसे। उसी तरह क्या हम यह नहीं मान सकते कि हमारा पार्थिव व्यक्तित्व हमारे शाश्वत व्यक्तित्वके अनुसार ही निर्मित होता है!

वर्त्तमान युगके अनेकानेक मनोवैज्ञानिकोंके द्वारा यह तो प्रमाणित हो ही गया है कि अकेला पार्थिव व्यक्तित्व कदापि उन क्रियाओंका समुद्भावक नहीं हो सकता, जिन्हें हम कल्पना, स्मृति, विचार, प्रेम, घृणा, प्रभृतिके नामसे अभि-हित करते हैं। और यह भी निश्चित हो गया कि पार्थिव व्यक्तित्वके किसी विशिष्ट भागमें हमारा चिरन्तन व्यक्तित्व नहीं रह सकता। तब ऐसी अवस्थामें इस पार्थिव व्यक्तित्व को ही अपनी दृष्टिके सामने रखते हुए यदि हम अपने समस्त क्रिया-कलाप सम्पन्न करते हैं तो यह हमारा घोरतम उन्माद होगा।

कारवाँसे बिछुड़कर मरुस्थलीमें डाकुओंके द्वारा लुट जानेवाला पथिक दयाका पात्र होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं; लेकिन फिर उन डाकुओंका गुलाम बनकर कारवाँको ही बरबाद करनेका प्रयास करनेवाला व्यक्ति घृणाका पात्र!



यहां एक बात और विचारणीय है। मानवोंके अतिरिक्त अन्य प्राणधारियोंमें भी पार्थिव और शाश्वत व्यक्तित्वका संश्लेषण हो पाया है या नहीं इस सम्बन्धमें निश्चयपूर्वक कुछ भी कहनेमें मैं असमर्थ हूँ। हो सकता है, इस ग्रहमें मानवोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारके जीव-जन्तुओंका शाश्वत व्यक्तित्व अत्यधिक अशक्त कर दिया गया हो और उन्हें ज्ञानकी समस्त आलोकधाराओं से दूर रखनेवाला ही भौतिक व्यक्तित्व भी प्राप्त हुआ हो या हो सकता है, वे मानवोंकी अपेक्षा अधिक भाग्यशाली हों, क्योंकि जो चिन्ताएँ निशिवासर मानवोंके मानस-विहगको बाण-विद्ध करती रहती हैं, उनसे वे अस्पृश्य-से प्रतीत होते हैं।

या यह भी हो सकता है कि इस ग्रहकी सञ्चालिका-शक्तिने तरह-तरहके पार्थिव व्यक्तित्वोंका निर्माण करते-करते, उन्हें बना-बनाकर मिटाते हुए और मिटा-मिटाकर बनाते हुए अन्ततः ऐसे पार्थिव व्यक्तित्वके निर्माणमें सफलता प्राप्त कर ली हो जो अन्य ग्रहोंसे आगत व्यक्तियोंके लिये उपयुक्त हो सके।

इस कल्पनाकी सत्यताको स्वीकार करनेसे ही विकासवादके नामकी सार्थकता प्रतीत होती है।

'दुनिया—मेरी दृष्टिमें' मैंने योरपकी साइकिकल रिसर्च सोसाइटीके कतिपय प्रयोगोंका उद्धरण दिया है, जिनसे हमलोगोंके चिरन्तन व्यक्तित्वकी रूप-रेखाके इस सिद्धान्तका समर्थन होता है।

हमारे इस पार्थिव व्यक्तित्वको शाश्वत व्यक्तित्वके साहचर्यकी अनिवार्य आवश्यकता है, अन्यथा सुन्दरताकी ज्योतित प्रतिमा क्षण-भरमें घृणित और कुत्सित रूप ग्रहण कर लेती है! पार्थिव व्यक्तित्वसे शाश्वत व्यक्तित्वका सम्बन्ध विच्छिन्न होनेके बाद सुंदरतम आकृतिकी भी जो अवस्था होती है वह घृणाकी ही सहचरी है! अतिशय सुंदर रमणी हो,—उसके कमनीय कपोलोंकी मसृणता योगियोंको भी मन्मथ-पीड़ित कर देनेकी सामर्थ्य रखती हो,—उसका मेचक केश-कलाप कविके अन्तर्देशमें शत-शत छन्दोंको नृत्य-निरत कर डालता हो,—उसकी जादूभरी रसीली अँखड़ियाँ दर्शकके प्राणोंमें राशि-राशि भावोन्मादना उद्रिक्त कर डालती हों, लेकिन ज्यों ही उसका शाश्वत व्यक्तित्व उसके पार्थिव व्यक्तित्वसे विलग हुआ, त्योंही वह सारा सुषमा-निकेतन जतु-गृहके समान जलकर भस्मसात् हो जाता है,—चुम्बनकी लालसासे ओठोंको सुलगा देनेवाले वे सुकोमल कपोल निष्प्रभ हो जाते है,—वे नशीली अँखड़ियाँ भयावनी मालूम होने लगती हैं!

हमारा शाश्वत व्यक्तित्व ही सब कुछ है; यह पार्थिव व्यक्तित्व तो एक बन्धन-मात्र है, जो हमें इस ग्रहपर रोके हुए है। लेकिन दुर्भाग्यवश इस क्षण-स्थायी भौतिक परिधानको हम अधिक महत्व देते आये हैं! हमारे अधिकांश क्रियाकलाप तभी तकके लिये होते हैं, जब तक कि यह भौतिक आवरण हमारे

साथ है ! हमारी अधिकांश चिन्ताएँ इस नन्हें-से जीवनकालसे ही सम्बन्धित होती हैं, यद्यपि हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि इस वर्त्तमान जीवनावस्थासे पहलेकी और बादकी काल-विस्तृतिके सामने यह जीवन सर्वथा नगण्य ही नहीं, सर्बथा अस्तित्वहीन-सा प्रतीत होता है ।

मान लीजिये, आप अपने दो-चार संगी-साथियोंके साथ यात्रा-पथपर चले जा रहे हैं । एकाएक संध्या अनागत अन्धकारकी अग्रदूतिनी बनकर प्रतीची-क्षितिजमें मुस्कराने लगती है ! दो चार दीपक भी वह जला देती है । आपका और आपके साथियोंका उत्साह अप्रतिहत रहता है ! कदम बढ़ते ही चले जाते हैं लेकिन एकाएक अन्तरिक्ष-पथमें सघन मेघमालाओंकी गर्जना सुन पड़ती है और उसके कुछ ही क्षणों बाद रिमझिम-रिमझिम भी । एक तो पहले से ही यात्रा-श्रम-जर्जर चरण, उसपर कुहू निशाका यह भीषण अन्धकार और उसपर यह जल-वर्षण ! फिर भी आपलोग बढ़ते ही चले जाते हैं ! रुकनेका नाम नहीं लेते ! पहले मस्तकसे स्वेद-सीकर चूते थे, अब वर्षाकी नन्हीं-नन्हीं बूँदे चूने लगती हैं ! पहले एक दूसरेकी ओर उल्लसित होकर देखते हुए और स्नेहसिक्त वार्त्तालाप करते हुए कदम आगे बढ़ते थे; अब एक दूसरेका हाथ पकड़े हुए धीरे-धीरे आपलोग तिमिर-पथपर बढ़े चले जा रहे हैं । एकाएक चपलाके क्षणस्थायी आलोकमें आपलोगोंको एक खँडहर दिखलायी देता है । वहां प्रमुदित होकर आपलोग जा पहुँचते हैं । वहाँ पहुँचने पर आपलोगोंको अतिशय प्रसन्नता होती है और कुछ क्षण विश्राम करनेके उपरान्त आपलोग खँडहरको ठीक करनेमें लग जाते हैं । बाहर पानी बरस रहा है । मेघोंकी गर्जना हो रही है । और उस विशालकाय खँडहरके अन्दर आपलोग नानाविध प्रयासोंमें संलग्न हैं । दिनपर दिन

बीतते चले जा रहे हैं, किन्तु पानी नहीं थमता। अन्तरिक्ष मेघमालाओंसे छुटकारा नहीं पाता। शायद वह देश ही ऐसा है, जहां निरन्तर जल-वर्षण होता रहता हो।

बाहर चारों ओर भीषण अन्धकार। निशिवासर जल-वर्षण। मार्गका कोई पता ही नहीं। ऐसी अवस्थामें यदि आपलोग कठिनाइयोंसे बचनेके लिये उस खँड़हरको ही अपना वास-स्थल बनानेके उन्मादी प्रयासोंमें संलग्न हो जाइयेगा तो क्या यह सर्वथा अहितकर नहीं होगा? क्या उस खँडहरका आवास आपके अस्तित्वके लिये घातक नहीं प्रमाणित होगा?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बाहर घनान्धकार है! निर्जन सघन कान्तार है! बन्धुर, कण्टक-संकुल पथ है, लेकिन इसीलिये क्या अपने सच्चे मार्गका अन्वेषण न करना प्रशंसनीय समझा जायेगा?

'नित्य प्रति आप मनुष्योंके जीवनमें मरणका अन्धकार आता हुआ देखते हैं, फिर भी आप जीवनके उस पारके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं सोचते! इन्हीं व्यर्थकी पार्थिव चिन्ताओंमें व्यस्त रहते हैं! गृह-निर्माण, स्वर्ण-सञ्चय प्रभृतिकी चिन्ताओंमें ही व्यतिव्यस्त रहा करते हैं, यह कैसी विचित्र-सी बात है!" इस प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर अक्सर यही दिया जाता है कि हम यदि अपनेको इन कार्योंमें फँसाये न रखें तो करें क्या! मृत्युके उपरान्त क्या होगा, इसको जानना हमारे लिये असम्भव है!

यह उत्तर दयनीय असमर्थताका द्योतक है! और इसलिये वे हतभाग्य प्राणी,—प्राभतिक किरणोंके आगमनसे लेकर निशीथकी तमालिङ्गित घड़ियोंतक राज्य-विस्तार, मुद्रा-सञ्चय, प्रासाद-निर्माण प्रभृतिकी चिन्ताओंमें व्यस्त रहनेवाले वे प्राणी करुणाके पात्र हैं! इस विचित्र ग्रहकी विचित्र सामा-

जिक व्यवस्थामें वे चाहे जितने सत्कृत, समादृत हो लें,—नानाविध परितापों, अनुतापोंसे दग्ध रहते हुए भी वे अपनेको चाहे जितना भी सुखी क्यों न समझते रहें,—अपनी असफलताओंको ही दुनियाके सामने वे सुमहान सफलताओंके रूपमें क्यों न उपस्थित किया करें,—उनका साराका सारा जीवन है अन्ततः एक विडम्बना ही!

और, वे विचारक जिनमें चिन्तन करनेकी एवं सत्यासत्यकी विवेचना करनेकी क्षमता है, जो अपनी मानसिक शक्तियोंके द्वारा न जाने कैसे-कैसे चमत्कारोंकी सृष्टि नित्य कर रहे हैं, उनको क्या कहा जाय? वे अन्य समस्त विषयों पर विचार करेंगे, किन्तु मृत्युके बादकी मानवी स्थितिपर विचार करना उन्हें निरर्थक-सा प्रतीत होता है। कौन-सी चट्टान कैसे बनी है और कौन-से मूलतत्वसे कौन-से मूलतत्त्वको मिला देनेसे कौन-सा परिणाम निकलता है, इसपर विचार करते हुए एवं नानाविध गवेषणाएँ करते हुए वे गर्वकी अनुभूति करते हैं और यह सोचते हैं कि ऐसा करके वे अपना और मानव-जातिका प्रभूत उपकार साधन कर रहे हैं! किन्तु जब मृत्युकी हिम-शीतल उँगलियोंका इशारा उन्हें अपनी ओर बुलायेगा, उसके बाद क्या होगा, इसपर विचार करना उन्हें महत्त्वहीन-सा प्रतीत होता है!

मैं समझता हूँ, उनलोगोंकी बौद्धिक शक्तियाँ उस दीपकके समान हैं, जो जलाया तो जाता है मार्गके अन्धकारको दूर करके उसे आलोकित करनेके लिये, किन्तु राहीको उसके मार्गकी भीषणतासे परिचित करानेके बाद जो नैश समीरणके एक नन्हें-से आघातसे ही निर्वापित हो जाता हैं; और केवल इतना ही नहीं, प्रज्वलित होते समय राही की उँगलियोंको भी जला डालता है।

हमारी ज्ञात चेतनाके अतिरिक्त हममें एक अप्रज्ञात चेतना भी है, इस सम्बन्धमें सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता डा० सिगमंड फ्रायडने जो प्रकाश डाला है, वह प्रशंसनीय है। मनोवैज्ञानिक जगत्में अप्रज्ञात-चेतनासम्बन्धी विचारों को लेकर इस विद्वानने १८९२ में प्रवेश किया था और उसके बाद ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों त्यों इसके विचारोंका विश्वव्यापी प्रसार होता गया। आजके मनोवैज्ञानिक इसके विचारोंके द्वारा काफी प्रभावित हैं।

ज्ञातचेतना ही सब कुछ नहीं है, हममें अप्रज्ञात चेतना भी है और इस अप्रज्ञात चेतनाका ही प्राधान्य है,—ज्ञातचेतना तो इसके सामने सर्वथा नगण्य-सी है, यहांतक माननेमें हमें कोई आपत्ति नहीं, किन्तु इस अप्रज्ञात चेतनाके स्वरूपके सम्बन्धमें एवं इसकी प्रभावात्मकताके सम्बन्धमें फ्रायड एवं उसके अनुयायिवर्गने जो सिद्धान्त प्रचारित किये हैं, वे तर्ककी कसौटी पर खरे नहीं उतरते। इस सम्बन्धमें मैं अप्रज्ञात चेतना नाम्नी एक पुस्तक लिख रहा हूँ।

बहुत-से व्यक्तियोंकी यह भ्रान्त धारणा-सी हो गयी है कि वर्तमान मनो-वैज्ञानिक जगतने एक स्वरसे फ्रायडके अप्रज्ञात-चेतनासम्बन्धी सिद्धान्तोंको स्वीकार कर लिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि फ्रायडके सिद्धान्तोंका मनो-वैज्ञानिक जगतमें काफी समादर हुआ है, और उनके अनुयायियोंकी संख्या कम नहीं है, लेकिन अनेकानेक वैज्ञानिक ऐसे भी हैं, जो फ्रायडके सिद्धान्तोंके घोर विरोधी हैं। उन्हें अप्रज्ञात चेतनाकी फ्रायडके द्वारा निर्धारित रूपरेखा एवं उसकी प्रभाव-पद्धति ही अमान्य नहीं प्रतीत होती, यह साराका सारा सिद्धान्त अमान्य-सा प्रतीत होता है। डा० जुंग अप्रज्ञात चेतनाके अस्तित्वको तो मानते हैं, किन्तु इसकी क्रियाओंके सम्बन्धमें फ्रायडसे काफी मतभेद रखते हैं। डा० जुंगका स्थान मनोवैज्ञानिक जगतमें साधारण नहीं है।

फ्रायड और फ्रायडके अनुयायी मानवी ज्ञात चेतना और अप्रज्ञात चेतनाके सम्बन्धमें जो कुछ मानते हैं, यदि उसे ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया जाय तो फिर मानवी स्वतन्त्रता नामकी कोई चीज नहीं रह जाती। हमारा प्रत्येक चेतन कार्य हमारी इस अप्रज्ञात चेतनाके द्वारा प्रभावित, शासित, नियन्त्रित होता है। हम इसपर किसी प्रकारके अधिकारकी स्थापना नहीं कर सकते।

फ्रायडके सिद्धान्तको समझनेके लिये मानवी मानस-लोकको एक ऐसे प्रासादसे उपमित किया जा सकता है, जिसके दो हिस्से हैं। एक हिस्सेकी अधिवासिनी तो यह ज्ञात चेतना है, जिससे हम इतने अधिक परिचित हैं। इस हिस्सेकी अधिवासिनी बड़ी नम्र, मिलनसार और समझ बूझकर काम करने वाली है। उसे सब कुछ देखते हुए चलना है। अपना-पराया, बुरा भला, सद्-असद् सब कुछ विचारना है। लेकिन दूसरे हिस्सेकी अधिवासिनी

बड़ी असंस्कृत, असभ्य और धृष्ट है। बड़ी ही उद्दण्ड भी। रह-रह कर पहली अधिवासिनीको तङ्ग करने लगती है।

फ्रायडने इन दोनों प्रतिवेशिनियोंके बीच एक सिपाही खड़ा कर दिया है, जो उस असंस्कृता का पथावरोध करता रहता है।

लेकिन उस सिपाहीके अलग होनेपर वह असभ्य अधिवासिनी अपना उत्पात आरम्भ कर देती है। निद्रित होनेपर वह सिपाही भी निद्रित हो जाता है! फिर क्या है! वह अपना नग्न नृत्य आरम्भ करती है।

हमारे स्वप्न हमारी अप्रज्ञात चेतनाके द्वारा सम्पन्न होते हैं। फ्रायडके अनुयायिवर्गने स्वप्नोंको मानवी अप्रज्ञात चेतनासे अभिज्ञ होनेका सर्वोत्कृष्ट साधन माना है।

फ्रायडके मतानुसार इन दोनों अधिवासिनियोंमें जो पारस्परिक संघर्ष होता है, वह नाना रूप ग्रहण करता है। हमारे जीवनमें अनेकानेक इच्छाओंका समुद्भव होता रहता है, लेकिन उनमें सबोंकी तो पूर्ति नहीं हो पाती। बहुत-सी इच्छाएँ अत्यधिक प्रबल होती है, लेकिन लाख प्रयत्न करने पर भी वे पूरी नहीं होतीं! इस प्रकारकी अपूरित वासनाएं कंप्लेक्समें परिणत हो जाती हैं और ये कंप्लेक्स हमारे जीवनकी गतिविधियोंको कभी-कभी अत्यधिक सशक्त रूपसे परिचालित करने लगते हैं।

मानव-जीवनको इच्छाओंका क्रन्दन-स्थल ही समझिये। न जाने कितनी-कितनी आशाओं, अभिलाषाओं, आकांक्षाओंका खून नित्यशः करना पड़ता है। साधारण अभिलाषाओंको तो जाने दीजिए। जीवनके रिक्तपात्रमें दो चार बूँद मधु डालनेकी वह एकाकिनी सलोनी आकांक्षा भी कहाँ पूर्ण हो पाती है! किसीके श्रीचरणोंको चूमकर जीवनकी नीरसतामें सरसताका आह्वान करनेकी

वह मोहमयी अभिलाषा कहाँ कार्यरूपमें परिणत हो पाती है ! किसीके प्रणय-सौरभसे अपने किंशुक-से गन्धहीन जीवनको सौरभित करनेकी वह उन्मादमयी इच्छा कहाँ सफल होती है !

ये अपूर्ण अभिलाषाएँ कविकी कविताओंमें एक क्रन्दन भरती रहती हैं,—उसकी कलाकी प्रत्येक अभिव्यक्तिको वेदना-मधुर बनाती रहती हैं !

किन्तु इन अपूरित आकांक्षाओंसे जीवनमें कई विचित्रताएँ भी आ जाती हैं, जो व्यक्तिकी पथ-प्रगतिका अवरोध करती रहती हैं।

फ्रायडके सिद्धान्तोंको ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लेनेसे मानवी अस्तित्वकी महत्ताका अनेकांशमें विलोप-साधन-सा हो जाता है। वह कहता है कि हमारी ज्ञात चेतना हमारी अप्रज्ञात चेतनाका ही एक समुन्नत एवं भद्र रूप है। हमारी अप्रज्ञात चेतनापर हमारी अधिकार-स्थापना असंभव है ! हम उसके गुलाम हैं।

और सबसे विचित्र बात तो यह है कि हमारी अप्रज्ञात चेतना पूर्णांशमें सेक्ससे अनुप्राणित है ! कला, ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, राजनीति प्रभृति मानव-जातिके समस्त महत्त्वपूर्ण क्रिया-कलापोंका आधार है—सेक्स !

लेकिन फ्रायडके इस सिद्धान्तको एक शक्तिशाली अनुमानके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता और ये शक्तिशाली अनुमान अनेकांशमें खण्डित भी कर दिये गये हैं।

किन्तु फ्रायडके सिद्धान्तके आधार पर मानस-रोगियोंकी अनेकानेक बार जो चिकित्सा की गयी है और उसमें जो आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है, उसका कारण क्या है यह एक ऐसा प्रश्न है, जो फ्रायडके विरोधियों को बिपन्न-सा कर देता है।

मैं आगे ही लिख चुका हूँ कि हमारे दो व्यक्तित्व हैं। एक पार्थिव और एक चिरंतन। वर्त्तमान जीवनमें इन दोनोंमें अविच्छेद्य सम्बन्ध हो गया है। मरणका दयालु तम-श्यामल देवता ही इस सम्बन्ध को विच्छिन करनेकी सामर्थ्य रखता है। हमारा चिरंतन व्यक्तित्व ही सब कुछ है और उसी की समुन्नतिका हमें अहर्निश प्रयास भी करना चाहिये। यह पार्थिव व्यक्तित्व उपेक्षणीय नहीं है, क्योंकि इसकी उपेक्षासे चिरंतन व्यक्तित्वकी भी महती हानि होनेकी सम्भावना रहती है—वर्त्तमान घनिष्ट सम्बन्धके कारण।

हमारे पार्थिव व्यक्तित्वकी अधिकांश क्रियाएँ क्षुधा-निवृत्ति और यौन पिपासाकी निवृत्तिसे अनुप्राणित होती हैं, ऐसा माननेमें हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। लेकिन केवल इसीलिये समस्त क्रियाओंको हम क्षुधा-परिशमनकी और यौन-वासनाकी परितृप्तिकी ही अभिव्यक्ति नहीं कह सकते। घनिष्ट साम्प्रतिक सम्बन्धके कारण एक दूसरेके कार्योंसे दोनों अपनेको विलग और अप्रभावित नहीं रख पाते। पार्थिव व्यक्तित्वकी क्रियाओंका प्रभाव चिरंतन व्यक्तित्वपर पड़े बिना नहीं रहता। जिस समय शाश्वत व्यक्तित्व प्रेमके देवताकी चन्द्रिकोज्वल सुषमासे बल प्राप्त करता रहता है, उस समय पार्थिव व्यक्तित्व सेक्सकी जागृतिसे बल प्राप्त करता रहता है। चिरंतन व्यक्तित्वकी क्रियाएँ पार्थिव व्यक्तित्वमें भी क्रियात्मकता जागृत करती है, लेकिन पार्थिव व्यक्तित्व को अधिकांश क्रियाएँ यौनवासनासे अनुप्राणित होती है, इसलिये मानवी व्यक्तित्वकी समस्त क्रियाओंका आधार यही है, यह कहना भ्रामक है।

जो लोग यह कहते हैं कि प्रेम और कुछ नहीं, इन्द्रियजनित सुखात्मक संवेदनोंकी ही एक विशिष्ट निविड़ताका परिष्करण है, वे भ्रममें हैं! प्रेम

एक विशुद्ध और पावनी ज्योति है, जिसकी छायाका भी स्पर्श वासनात्मक प्रवृत्तियाँ नहीं कर पातीं। वह नन्दन-काननका वह सौरभित जीवनमय किरण-चुंबित कुसुम है, जिसमें वासनाका कीट कदापि प्रविष्ट नहीं हो सकता लेकिन चिरन्तन व्यक्तित्व पर इस आलोकदानी देवताका कर-स्पर्श होते ही पार्थिव व्यक्तित्वमें भी क्रियात्मकता सजग हो उठती है और उन क्रियात्मकताओंका उद्गमस्थल यदि फ्रायड सरीखे मनस्तत्ववेत्ताओंको सेक्समें मिलता है तो यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं।

जब हम किसी अतिशय सुन्दर मानवको या अतिशय विमोहक प्राकृतिक दृश्यको देखते हैं, उस समय हमारी इन्द्रियोंको सुखानुभूति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु इसलिये यह कहना कि इन्द्रियोंकी सुखानुभूतियोंसे ही हममें उन पदार्थोंके प्रति आकर्षण जागृत हो पाया है और हम उनमें सौन्दर्यका आभास पा रहे हैं, सर्वथा अमान्य है।

केवल शरीरको ही सत्य मानकर और विश्लेषणात्मक पद्धतिसे उसका अध्ययन करके ही यदि हम समग्र मानवी व्यक्तित्वको समझनेका प्रयास करते हैं तो हमें कदापि सफलता नहीं मिल सकती। शरीर गौण है। पूर्ण मानवी व्यक्तित्वमें शरीरका स्थान महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण स्थान है शाश्वत सत्ताका। शरीर अपने साम्प्रतिक सम्बन्धके कारण इसको प्रभावित करता है, लेकिन इसी माया-देशमें साधनाके द्वारा ऐसी स्थिति भी आ सकती है, जब यह उसे प्रभावित न कर सके!

डा० फ्रायडके अनुयायी जिसे अप्रज्ञात चेतनाके नामसे अभिहित करते हैं, वह कहीं हमारे इसी शाश्वत व्यक्तित्वको बन्धनग्रस्त चेतना तो नहीं है?

हमारी कलामें, हमारे स्वप्नोंमें, हमारी कल्पनाओंमें अप्रत्यक्ष रूपसे सक्रिय रहनेवाली यह चेतना हमारे शाश्वत व्यक्तित्वके अनुभवोंका वह निचय तो नहीं है, जो इस ग्रहमें अवतरित होनेके बाद हमें प्राप्त हुए हैं ?—एक जन्ममें या कई जन्मोंमें !

जो हो, वर्त्तमान मनोवैज्ञानिक जगत् यह स्वीकार कर चला है कि हमारी चेतनाका जो स्वरूप हमें ज्ञात है, वहीं तक हमारी चेतना सीमित नहीं है, उसका एक महत्त्वपूर्ण भाग तो अभी हमारे द्वारा स्पर्शित भी नहीं हुआ है !

हर्षकी बात है कि वर्त्तमान मनोविज्ञानवेत्ता मानवी चेतनाके इस अविज्ञात प्रसारके सम्बन्धमें अभिज्ञता प्राप्त करनेके लिये अब सचेष्ट हो रहे हैं। लेकिन इस समय तक इस अप्रज्ञात चेतनाके सम्बन्धमें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह सर्वथा अपर्याप्त है और इसीलिये भ्रामक भी।

देखें, मानवी चेतनाके इन तमाकीर्ण रहस्यों पर कब ज्योतिर्धारा फेंकी जा सकेगी ! अभी तो हम इतना ही कह सकते हैं कि हमारे चिरन्तन व्यक्तित्वकी जो बन्धनग्रस्त चेतना है, उसीके एक सूक्ष्मतम अंशका आंशिक ज्ञान प्राप्त करके मनोवैज्ञानिक ज़गत्में डा० फ्रायड अप्रज्ञात चेतनाका सिद्धांत प्रचारित करनेमें समर्थ हो पाये हैं !



मानवी मस्तिष्कके सम्बन्धमें और मानवी चेतनाके सम्बन्धमें या यों कहिये कि मानवी शरीरके सम्बन्धमें और मानवके वास्तविक व्यक्तित्वके सम्बन्धमें मेरे जो विचार हैं, उन्हें मैंने स्पष्ट कर दिया है। ये विचार अब तककी उत्कृष्टतम वैज्ञानिक गवेषणाओंसे सहमत हैं, साथ ही उनसे परिपुष्ट भी।

मेरा विश्वास है, हमलोगोंके मस्तिष्कके अन्दर एक ऐसा भाग भी है, जो दूरागत विचारोंकी लहरोंको पकड़ता है और उनसे हमें अभिज्ञ करता है।

केवल अपने विचार-पथको प्रशस्त करनेके लिये और अपनी सुविधाके लिये ही मैंने ऐसा विचार नहीं कर लिया है। इसके पीछे विज्ञानसम्मत चिन्तनाका सशक्त आधार भी है।

एक साधारण-सा उदाहरण लीजिये। कभी-कभी जब हम किसी सुन्दर निर्जीव या सजीव पदार्थको देखते हैं या कोई सुमनोहर संगीत-ध्वनि सुनते

हैं तो हमारे मस्तिष्कमें ऐसी-ऐसी भावनाओंका जागरण होने लगता है कि हम स्वयं आश्चर्यान्वित हो उठते है। बहुत-से दार्शनिकोंने कहा है कि जिन विषयोंको उनकी बोधागम्यताके कारण वे रात्रिदिवसके चिन्तनसे भी समझ नहीं सके थे, वे एकाएक किसी प्रकारका प्रयास किये बिना ही उनके सामने स्पष्ट हो गये! अधिकांश कवियों और दार्शनिकोंने इस परिश्रमहीन ज्ञान-प्राप्तिको अन्तर्प्रेरणाके नामसे अभिहित किया है। कवियों और दार्शनिकोंने ही नहीं, बहुत-से विज्ञानवेत्ताओंको भी अपने सुमहान आविष्कारोंका श्रेय इसी अन्तर्प्रेरणाको देना पड़ा है।

लेकिन यह अन्तर्प्रेरणा आखिर है क्या?

अन्य मनोविज्ञानवेत्ता इसका चाहे जो उत्तर दें, मैं तो यही कहूंगा कि हमारे पार्थिव आवासके पहलेका जो ज्ञान हमारे चिरन्तन व्यक्तित्वमें संचित है, वह कभी-कभी बन्धन-विमुक्त-सा होकर फूट पड़ता है, जैसे मेघाक्रान्त सूर्यकी रश्मियाँ कभी-कभी तनिक-सा मुक्ताकाश पाते ही फूट पड़ती हैं।

लेकिन इस प्रकारकी समस्त आयासहीन ज्ञान-प्राप्तियोंका कारण अन्तर्प्रेरणाको नहीं बताया जा सकता। अन्तर्प्रेरणाके साथ ही साथ हमें एक और प्रेरणाका अस्तित्व मानना ही पड़ेगा, जिसे हम बहिर्प्रेरणा कह सकते हैं। अन्तर्प्रेरणा और बहिर्प्रेरणाका पृथक्करण श्रमसाध्य अवश्य है, किन्तु असम्भव नहीं।

बहिर्प्रेरणाएँ वे प्रेरणाएँ हैं, जो इस ग्रहसे बाहर की हैं और जो अनेकानेक प्रकाश-वर्षोंकी दूरी पार करते हुए हमारे मस्तिष्क तक पहुँच पाती हैं।

सम्भवतः यहाँ पाठकोंके मनमें यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि आखिर इन बहिर्प्रेरणाओंका क्या स्वरूप है और वे किस प्रकार इतनी दूरसे हम तक आ पाती हैं।

ये बहिर्प्रेरणाएँ सशक्त गतिवाली विचार-धाराएँ हैं, किन्तु ये बिचार-धाराएँ एक स्थानसे दूसरे स्थान तक किस प्रकार चली जाती हैं?............

इसे स्पष्ट करनेके लिये रेडियोके प्रेषक केन्द्र-स्थानों और ग्रहणशील यंत्रोंका उदाहरण सर्वाधिक उपयुक्त होगा।

दूरवर्ती ग्रहोंसे,—उन दूरवर्ती ग्रहोंसे, जिनसे इस पृथ्वीतक प्रकाशके आनेमें कई वर्षोंका समय लग जाता है, विचारोंकी लहरें ईथरकी छाती पर कल्लोल करती हुई आती हैं और उन मस्तिष्कोंसे टकराकर अपनी अभिव्यक्ति करती हैं, जो उनकी ग्रहणोपयुक्त स्थितिमें होते हैं। सब रेडियो स्टेशन ब्राडकास्ट करते रहते हैं, लेकिन आपके रेडियो यंत्रसे वहांकी ही आवाज निकलेगी, जहाँ का सम्बन्ध आप उस समय स्थापित कीजियेगा! यही अवस्था मानवी मस्तिष्ककी भी है।

दूरवर्ती ग्रहोंसे जो विचार-लहरें इस ग्रहके वातावरण तक आती हैं, वे सर्वदा हमारी सहायता कर सकें, यह आवश्यक नहीं। जबतक हमारा मस्तिष्क उनको ग्रहण करने योग्य स्थितिमें नहीं रहेगा, तबतक ऐसा होना असम्भव है! और यही कारण है कि उन विचार-तरंगोंसे,—लाखों और करोड़ों मीलों को दूरी पार करके इस हाहाकार भरे ग्रहके वातावरणमें प्रविष्ट होने वाली विचार-तरंगोंसे सब लाभ नहीं उठा सकते! वे ही लाभ उठा सकते हैं, जिनका मस्तिष्क उपयुक्त अवस्थामें रहता है,—जो सदैव सत्यकी विवेचना करते हुए विश्वके अज्ञात, अविदित रहस्योंपर विचार करते रहते हैं!

दार्शनिकों, कलाकारों और वैज्ञानिकोंके जीवनमें अक्सर ऐसे अनुभव होते रहते हैं। वे किसी विषय पर महीनोंसे विचार करते रहते हैं,—अहर्निश चिन्तन-लीन रहते हैं, लेकिन प्रश्न उन्हें सुलझता नहीं नजर आता,—

ज्ञानकी एक नन्ही-सी किरण भी उनके पथको ज्योतित करती-सी नहीं दीखती । लेकिन एकाएक एक दिन उन्हें ऐसा मालूम होता है कि जिसके लिये वे इतना आयास कर रहे हैं,—टिमटिमाते हुए चिरागके प्रकाशमें रातें काली किया करते हैं, वह उन्हें अनायास ही मालूम हो गया है—प्रश्न सुलझ गया है और वे आश्चर्यित हो रहे हैं ।

मनोवैज्ञानिकोंने इसका स्पष्टीकरण नानाविध प्रणालियोंसे किया है, जिनमें सबसे ज्यादा महत्व उस प्रणालीको दिया गया है, जिसमें यह कहा गया है कि मानवी मस्तिष्क जब कार्य करता-करता अत्यधिक कार्य-निमग्न हो जाता है तब अन्तश्चेतना बहिर्चेतनाके अभावमें अपना कार्य स्थगित नहीं करती,—सदैव कार्यनिरत रहती है ! लेकिन चिन्तन करने वाले व्यक्तिको यह मालूम नहीं हो पाता कि उसके भीतर-ही-भीतर वह कार्य चल रहा है और जब एकाएक उसकी समस्याका समाधान हो जाता है, तब वह उसकी सरलतापर विस्मयान्वित हो उठता है । लेकिन उसके विस्मयान्वित होनेका कोई कारण नहीं होना चाहिये । बाह्य चेतना भले ही कार्यतत्पर नहीं रह पायी हो,—अन्तश्चेतना तो कार्य करती ही रहती है !

लेकिन यह अन्तश्चेतनाका सिद्धान्त एकाकी उतना सशक्त नहीं, जितना सशक्त बाह्य विचार-तरंगोंसे आहत होनेका !

इस ग्रहके अधिकांश गीत इस ग्रहके गीत नहीं है,—वे दूरवर्ती ग्रहोंके हैं । वहांसे अवतीर्ण हुए हैं । हां, माध्यम अवश्य यहांके मानवोंका है । इस ग्रहकी अधिकांश कला-कृतियां इस ग्रहकी नहीं हैं; वे दूरवर्ती ग्रहोंसे अवतरित हुई हैं,—यहांके मानवोंका माध्यम ग्रहण करके !

तब हमें सदैव इस बातके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये कि हम दूरागत ग्रहोंसे इस ग्रह तक आनेवाली ज्ञानात्मक विचार-तरंगोंको ग्रहण करनेकी अधिकाधिक क्षमता अपनेमें उत्पन्न करें। अपने मस्तिष्कको सदैव इस योग्य रखें कि वह इस जादू भरे वातावरणके बाहरसे आनेवाली विचारलहरोंको पकड़ सके और हम सत्यकी किरणें अपने पथमें देख सकें!

संवेदनोंके पूर्ण वहिष्कार पर अनेकानेक विचारकोंने काफी जोर दिया है। उनका कहना है कि जबतक हम इन विभिन्न संवेदनोंसे अपने अस्तित्व को विमुक्त नहीं कर लेते हैं, तबतक हमारा मुक्ति-पथ प्रशस्त नहीं हो सकता! हमें सर्वथा प्रशांतात्मा होना पड़ेगा,—हर्ष, अमर्ष, आकर्षण, विकर्षण प्रभृतिसे सर्वथा दूर!

एक सीमातक यह ठीक भी है! संवेदनोंसे मानसिक शान्ति आहत होती है! और दार्शनिक चिन्तनाके लिये या वैज्ञानिक निरीक्षण, पर्यवेक्षण प्रभृति के लिये शान्त मस्तिष्ककी महती आवश्यकता है!

किन्तु इन संवेदनोंका समुचित उपयोग किया जाय तो वे अत्यन्त हितकर सिद्ध हो सकते हैं और मस्तिष्ककी कार्यकरी शक्तियोंको सहस्रगुणित कर सकते हैं ! दुनियाके महापुरुषोंका जीवनवृत्त इस बातका साक्षी है ! अधिकांश महापुरुषोंको जो प्रचण्ड कार्यकरी शक्ति प्राप्त हुई थी, उसके मूलमें विशिष्ट संवेदन ही काम कर रहे थे !

मस्तिष्क अपनी साधारण अवस्थामें जिस प्रकार कार्य करता है, उससे अधिक तेजस्विता और शक्तिके साथ वह उस समय काम करना प्रारम्भ करता है, जब कोई संवेदन उसका साथ देता है !

लेकिन, सब प्रकारके संवेदन ऐसे नहीं होते ! भय, अविश्वास, ईर्ष्या, घृणा प्रभृति संवेदन मस्तिष्ककी क्षमताओंको एक विकृत रूप प्रदान कर देते हैं ! प्रेम, विश्वास, सेक्स, महत्वकांक्षा प्रभृति वरेण्य हैं और इनसे पर्याप्त लाभ उठाया जा सकता है ! इनमें प्रेम और सेक्सकी शक्ति सबसे अधिक है ! जो व्यक्ति किसी अन्य व्यक्तिको जितना ही प्रगाढ़ प्रेम करता होगा, उसके मस्तिष्ककी कार्यकरी शक्ति उसी अनुपातसे उतनी ही विवर्धित होगी ! किन्तु यह कार्यकरी शक्ति समस्त क्षेत्रोंमें कार्यकरी नहीं सिद्ध हो सकती। प्रेमियोंके द्वारा विशिष्ट क्षेत्रोंमें अविवेकितापूर्ण कार्य सम्पादन होता देख जिन व्यक्तियोंने प्रेमको बौद्धिक शक्तियोंका-शत्रु बताया है, वे भ्रमित हैं। सेक्स भी शक्तियोंको विवर्धित करता है, लेकिन तभी जब उसको समुन्नत रूप प्रदान किया जाता है ! अपने नग्न रूपमें तो वह मानवका सबसे बड़ा शत्रु है—हमारी शक्तियोंको नष्ट करनेमें अप्रतिम ! लेकिन यदि उसे परिष्कृत करके समुन्नत रूप प्रदान कर दिया जाय तो वह हमारे मस्तिष्कको महान् शक्ति प्रदान करता है !

इन संवेदनोंके जागृत होनेपर मस्तिष्कके उस भागमें, जो दूरागत विचार-तरंगोंको पकड़नेकी क्षमता रखता है, गतिशीलता उत्पन्न हो जाती है ! और तब मस्तिष्ककी विशिष्ट विचार-गतिके अनुसार ही दूरागत तरंगें गृहीत होती हैं !

इसीलिये इस ग्रहमें हमें अन्य कार्योंसे चित्त और बुद्धिको पराङ्मुख करके सदैव सत्य-चिंतनका जो आदेश पुराकालीन ऋषियोंने दिया था, वह अत्यन्त हितकर है । उससे मस्तिष्ककी गति दूरागत आलोकदात्री विचार-तरंगोंको पकड़ने योग्य हो जाती है और इस ग्रहके वातावरणमें फैली हुई कुत्सित, मिथ्या और हाहाकार भरी विचार-तरंगें हमारा कोई अनिष्ट नहीं कर सकतीं ।

विचार-तरंगोंका महत्त्व वैज्ञानिक युग अब जानने लगा है और योरपकी साइकिकल रिसर्च सोसायटीके द्वारा जो टेलीपैथी-सम्बन्धी प्रयोग हुए हैं, वे इस सिद्धान्तका विश्वव्यापी प्रचार कर रहे हैं ! विचारोंमें भी गति होती है और किसी भी भौतिक साधनके अभावमें वे एक स्थानसे दूसरे स्थान तक प्रेषित किये जा सकते हैं, इसका ज्ञान मिश्र और भारतके प्राचीन ऋषियोंको था । इसके अनेकानेक प्रमाण प्राचीन ग्रन्थोंके अध्ययनसे उपलब्ध होते हैं ।

अतएव यह कहना कि दुनियासे दूर एक छोटे-से स्थानमें बैठकर चिंतन करनेवाले व्यक्तिके द्वारा इस ग्रहकी गतिविधियाँ कुछ भी प्रभावित नहीं हो रही हैं, सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण धारणा है ! हिटलर और मुसोलिनीने, चर्चिल और चेम्बरलेनने या इसी प्रकारके अन्य राजनीतिक नेताओंने इस ग्रहकी गतिविधियोंमें जो परिवर्त्तन किये हैं, हो सकता है, वे किसी अज्ञात कोनेमें

बैठे हुए एकान्तवासी विचारककी सशक्त विचार-लहरोंके ही अवश्यम्भावी परिणाम हों।

विचारोंकी शक्ति असामान्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं। और उस समय तो इसमें और भी अधिक शक्ति आ जाती है, जब प्रेम, विश्वास प्रभृति संवेदनोंके द्वारा वे संचालित होते हैं! उस समय उनकी गति अत्यन्त तीव्र हो जाती है।

दूरवर्त्ती ग्रहोंसे हमारे ग्रह तक जो विचार-तरंगें आती हैं, उन्हें ग्रहण करनेके लिये ही संवेदन-प्रेरित विचार-तरंगोंका प्रेषण आवश्यक नहीं है, बल्कि दूरवर्त्ती ग्रहोंतक अपनी विचार-तरंगोंको अच्छी तरह प्रेषित करनेके लिये भी इसकी महती आवश्यकता है।

इस ग्रहके नानाविध अधिवासियोंमें सबसे अधिक शक्तिशाली प्राणी वह नहीं है, जिसके पीछे लाखों सैनिक तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र लेकर खड़े हों या जो अपनी स्वर्णमुद्राओंके भारसे दबा जा रहा हो! सूर्यके चारों ओर परिक्रमा देनेवाले इन मायामय ग्रहोंका सबसे अधिक शक्तिशाली प्राणी वह हैं, जो अपनी विचार-तरंगोंकी शक्ति पहचान चुका है और उनका समुचित उपयोग करना भी!

—o—

(१५)

हमारे मस्तिष्ककी सुप्त शक्तियोंको जागृत एवं प्रबुद्ध करनेकी क्षमता सौंदर्यमें भी कुछ कम मात्रामें विद्यमान नहीं हैं। इस ग्रहके पंकिल वातावरण में सौन्दर्य-शतदलका मनहृण सौरभ न जाने कितने कलाकारोंकी कल्पनाको नूतन शक्ति प्रदान कर चुका है!

सौन्दर्यके अभावमें इस ग्रहमें कविता-श्रीका आगमन हो पाता, मुझे तो इसमें सन्देह है!

प्राची-क्षितिजकी प्राभातिक एवं सायन्तन रक्तोत्पल-सुन्दरता प्राणोंको न जाने किस अविजानित अप्सराके नूपुर-रवसे मुखर कर डालती है! पूर्णिमा-निशीथकी कौमुदी-धौत सुषमा-राशि सुप्त, शिथिल कल्पनाके पंखोंमें न जाने कहाँसे तो अभिनव शक्तिका सञ्चार कर देती है! गोसर्गके उन्नत गिरि-शिखरों पर छायी हुई प्राणमोहक सुषमा क्या जाने कितने ही कलाकारोंके पार्थिव अस्तित्वको उन्नत कर चुकी है!

साथ ही, मानवी सौन्दर्य भी हमारे मस्तिष्ककी शक्तियोंको प्रबुद्ध करनेकी कुछ कम क्षमता नहीं रखता। ज्योत्स्ना-चुम्बित वन-बल्लरियोंके पवन-प्रकम्पन से कहीं अधिक शक्ति किसी नर या नारीकी सुन्दर केशराशिका ईषत्कम्पन हमारे मस्तिष्कको प्रदान करता है। कोकिलकी काकलीकी अपेक्षा सुन्दर सहचर या सहचरीकी वाणी हमें अधिक बल प्रदान करती है। कोमलतम कुसुमका स्पर्श हममें किसी अतिशय सुन्दर नर या अतिशय सुन्दरी नारीके मसृण करतलोंके स्पर्शसे अधिक विद्युत्संचार नहीं कर पाता।

इसका कारण यह है कि मानवी सौन्दर्यमें हम जो सामीप्य पाते हैं, वह प्राकृतिक सौन्दर्यमें नहीं। वह हमारे लिये दूरकी चीज-सी हो जाती है। उससे हम हर्षान्वित हो सकते हैं,—पुलकित प्राणोंसे उसकी ओर अपलक देखते रह सकते हैं, किन्तु हम उसे अपना कहाँ बना पाते हैं!—अपने दुःखोंमें उसे दुखी और अपने सुखोंमें उसे सुखी कहाँ बना पाते हैं! श्यामा की काकली हमारे श्रवण-पुटोंमें चाहे जितना पीयूष-सञ्चार करे, वह हमें उतनी प्रिय नहीं लग सकती, जितनी किसी सुन्दर मानव या मानवीकी रससिक्त वाणी। क्योंकि हमारे प्राण कुछ खोये-खोये-से इस ग्रहमें विचरण कर रहे हैं औरउन्हें ममत्वकी अत्यधिक एवं अनिवार्य आवश्यकता है। प्रकृतिके दृश्य हमें ममत्व नहीं दे सकते. ममत्व ले भले ही लें। लेकिन ममता प्रदान करने के बाद ममताका आदान अनिवार्य सा हो जाता है, अन्यथा प्राणोंको बड़ा क्लेश होता है। प्रकृति इस आदानमें अक्षम है, इसलिये उसकी अपेक्षा हमें मानवी सुषमा अधिक प्रिय लगती है,—हमारे-थके हारे प्राणोंको अधिक बल प्रदान करती है,—हमारे मस्तिष्ककी कार्य-शक्तिको अधिक सजग करती है।

लेकिन इसके अपवाद भी है। बहुत-से व्यक्तियोंको मानवी सौन्दर्यकी अपेक्षा प्रकृतिक सौन्दर्य अधिक प्रिय लगता है और इसी कारण उन्हें इसीके द्वारा अधिक बल प्राप्त होता है। वे अधिकांशमें ममताके भूखे नहीं रह पाते, क्योंकि अनुभव उन्हें सिखा देता है कि इस ग्रहमें ममताका प्रदान जितना सुलभ है, ममताका आदान उतना ही दुर्लभ! उन्हें नगरोंकी अपेक्षा विपिनवास अधिक रूचिकर प्रतीत होता है। सरिताके कलकल-निनादसे उन्हें नगरके जनरवकी अपेक्षा कहीं अधिक आनन्द प्राप्त होता है! वन्य कुसुमोंका सौरभ उन्हें नारियोंकी कवरीमें गुम्फित सुमनोंके सौरभसे कहीं अधिक कमनीय प्रतीत होता है।

इसका कारण अधिकांशमें यही होता है कि ऐसे व्यक्ति अपने सहचरोंसे महत्वका आदान प्राप्त करते समय मानवी अस्तित्वकी प्रवंचक कटुतासे अभिज्ञ हो चुके होते हैं! जिनके अस्तित्वमें उन्हें अपने प्राणोंके स्पन्दनकी सारी मधुरिमा सन्निहित मिलती है, वे ही जब विष-वर्षकोंके रूपमें परिणत हो जाते हैं, तब उन्हें वीतरागी बनना ही पड़ता है! साथ ही, प्राकृतिक श्री समष्टिगत रूपसे उन्हें आकर्षित करती है; लेकिन मानवी श्री ममत्व पर आधारित होकर व्यक्तिगतरूप ग्रहण कर लेती है। और व्यक्तिगत सौन्दर्य चिरन्तन रह नहीं पाता।

लेकिन, ऐसे व्यक्तियोंको महत्ता प्रदान करनेकी कोईआवश्यकता नहीं। मानवी सौन्दर्य की अपेक्षा वृक्षों, सरिताओं, निर्झरों एवं कपोतों, शिखावलोंके सौन्दर्यको प्राण-प्रदेशमें अधिक प्रश्रय देने वाले व्यक्तिको करीब-करीब समस्त युगोंमें अधिक महान् समझा गया है! लेकिन यह महत्ता-प्रदान व्यर्थ है। मानवी सौन्दर्यमें हमें जो वस्तु उपलब्ध होती है, वह

वृक्षों, सरिताओं, निर्झरों या अन्य प्राणियोंके सौन्दर्यमें नहीं । वहां जीवनकी सच्ची प्रतिध्वनि मिलती है ।

हां, एक बात अवश्य है । प्राकृतिक सौन्दर्य पवित्र रहता है,—वासनासे सर्वथा अस्पृष्ट । लेकिन मानवी सौन्दर्यका वासना-विरहित रहना कठिन-सा होता है । शायद इसीलिये इस ग्रहमें प्राकृतिक सौन्दर्यके उपासकोंको मानवी सौन्दर्यके उपासकोंकी अपेक्षा अधिक सन्मानकी दृष्टिसे देखा जाता है ।

लेकिन, यह तो एक प्रकारकी पलायन-प्रवृत्ति है । गेंदाको तोड़नेमें कांटे नहीं गड़ते, लेकिन गुलाबको तोड़ते समय कांटे चुभनेका भय रहता है, इसी-लिये गेंदा गुलाबकी अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सकता और न गुलाबका सञ्चयन करने वाले व्यक्तियोंकी अपेक्षा गेंदेका संचय करनेवाले व्यक्तिको ही अधिक महत्ता प्रदान की जा सकती है । मानवी सौन्दर्यकी उपासनाको वासना-विमुक्त रखना कठिन है, लेकिन सरिता, विटपी, निर्झर प्रभृतिकी सुषमाके सेवन में वासनाका प्रवेश नहीं हो पाता, इसीलिये उसे अधिक उपयुक्त वे ही समझ सकते हैं, जिनके प्राण दुर्बल हैं ।

मानवी सौन्दर्य हमारे मस्तिष्कको जितनी शक्ति प्रदान कर सकता है, उतना प्राकृतिक सौन्दर्य नहीं । अतएव हमारे जीवन-पथमें मानवी सौन्दर्यकी उपासनाका प्राधान्य होना चाहिये । रूप भले ही उसके विभिन्न हों ।

सुन्दर नरों या नारियोंकी ओर ध्यानपूर्वक देखना इस ग्रहके सर्वोत्कृष्ट प्राणियोंके समाजमें गर्हित समझा जाता है ! इसका कारण यह कहा जाता है कि मानवी सौन्दर्यके दर्शनसे ही मानवी वासनाकी प्रवृत्ति जागरूक हो उठती है । इधरके कई मनोविज्ञानवेत्ता तो ऐसा बलपूर्वक कहते हैं कि किसी भी

सुन्दरी नारी या सुन्दर नरकी ओर देखनेसे काम-लिप्साका जागरण किसी न किसी अंशमें होता ही है।

इस सिद्धान्तकी सत्यता खण्डित नहीं की जा सकती किन्तु इस सिद्धान्त की सत्यतासे ऊपर उठा जा सकता है। वहाँ तक प्रयास करके पहुँचा जा सकता है, जहाँसे सौन्दर्यका एक नवीन, प्राणप्रद और अतिशय पावन रूप दिखलाई देने लगता है। सूरदासके कृष्ण और तुलसीके राम कितने सुन्दर थे और उनके सौन्दर्यके दोनोंके दोनों क्या कम उपासक थे ! सुना है मजनूँ को लैलामें खुदा नजर आता था। और, मजनूंको ही क्यों, अधिकांश सौन्दर्यों-पासकोंको उपासनाके अत्यधिक निविड़ क्षणोंमें प्रतिमामें खुदा ही नजर आया है।

इतने ऊँचे स्तरतक उठना कलाकारोंके लिये सहजसाध्य है, क्योंकि कलाकारके प्राण सौन्दर्य-सरोवरकी वीचियोंमें ही बसते हैं। वह सरोवर सूख जाय तो कलाकार जी नहीं सकता। दार्शनिकके लिये वह इतना सहजसाध्य नहीं है हां, कोरे वैज्ञानिकके लिये यह अवश्य कठिन है, क्योंकि उसके प्राण मरुस्थलीकी उस बालुकाराशिमें बसते हैं, जहां कोई शतदल अपना सुरभि-प्रसार नहीं कर पाता और जहां केवल मरीचिकाके ही दर्शन प्राणोंको भरमाया करते हैं।

सौन्दर्यकी वास्तविकताको जाननेके लिये वैज्ञानिकोंने कम प्रयास नहीं किया है, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिल पायी है। विश्लेषणात्मक पद्धतिसे वे सौन्दर्यके एक ही रूपका आंशिक आभास पा सकते हैं, उसकी समग्रताको आत्मसात् नहीं कर सकते। क्योंकि वह अपनी समग्रतामें विश्लेषणके अयोग्य हो जाता है।

इन्द्रियोंके सुखात्मक संवेदनोंको ही अधिकांश वैज्ञानिकोंने हार कर सौन्दर्य समझा है। मैं भी सौन्दर्य पर विश्लेषणात्मक पद्धतिसे विचार करता हुआ कुछ वर्ष पहले इसी निष्कर्ष पर पहुंचता था, और फिर थोड़ी ही देर के बाद अपने निष्कर्षकी गलतियों पर विक्षुब्ध हो उठता था। प्रतिदिन दिनान्तकी आतपहर घड़ियोंमें गंगाके तटपर बैठकर चारों ओरकी प्राकृतिक सुषमा पर वैज्ञानिक पद्धतिसे विचार करता हुआ मैं यही निष्कर्ष निकालता था कि सौन्दर्यको इन्द्रियोंके सुखात्मक संवेदनोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन थोड़ी ही देर के बाद जब मैं अधिक एकाग्र होकर विषयमें प्रवेश करता था तो इस निष्कर्षकी व्यर्थता और निस्सारता प्राणोंको विक्षुब्ध-सा कर देती थी।

अब तो सौन्दर्यके सम्बन्धमें वैज्ञानिक पद्धतिसे विचार करना ही मैंने छोड़ दिया है, क्योंकि मैं जान गया हूं, वैज्ञानिक पद्धति यहां बहुत कम सहायता प्रदान कर सकती है और इसके साथ ही साथ मैं एक निष्कर्ष पर भी पहुँच गया हूँ। वह निष्कर्ष अधिकांश पाठकोंके लिये अमान्य तो होगा ही साथ ही साथ विचित्र भी, क्योंकि अभिनव विचार और अभिनव पदार्थ सदैव विचित्र प्रतीत होते हैं। वैसे, इस ग्रहकी वे घटनाएँ जिन्हें हम साधारण समझते हैं, कम विचित्र नहीं हैं। प्राचुर्यके कारण ही कोई चीज हमारे लिये सामान्य हो जाती है और न्यूनताके कारण ही विचित्र।

सौन्दर्यकी वास्तविकताके सम्बन्धमें कोई भी वैज्ञानिक गवेषणा सार्थक नहीं हो सकती। आस्कर वाइल्डके शब्दोंमें इसे रहस्योंका रहस्य तो नहीं कह सकता, किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि इस तमिस्रा-लोकमें जहां शाप-ज्वलित जीवन निशिवासर क्रन्दन किया करता है, यही वह चन्द्र-किरण

है, जो हमें आश्वस्त कर सकती है। हम लाख विश्लेषण करें,—लाख उपाय करें, लेकिन सौन्दर्यको समझनेकी हमारी समस्त विज्ञानसम्मत प्रणालियाँ विपुल व्यर्थतामें ही पर्यवसित होंगी। न जाने इस असुन्दर मायालोकमें सौन्दर्यकी यह पावनी ज्योत्सना-धारा किस दूरवर्ती ग्रहसे उतर कर चली आयी है!

सौन्दर्यको समझनेका मैंने बहुत प्रयास किया, लेकित मुझे सफलता नहीं मिली। इन्द्रियजनित सुखात्मक संवेदनोंके ही परिष्कृत रूपको मैंने सौन्दर्य समझनेका यत्न किया, लेकिन उसमें भी असफल ही हुआ। अब मैं तो हारकर इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि हमारे चिरन्तन वासस्थलको श्रीसुषमासे यहाँके दृश्य जितने ही अंशोंमें मिलते जुलते होंगे, वे हमें उतने ही प्रिय और सुन्दर लगेंगे—उनमें हमें उतना ही सौन्दर्य दिखलायी देगा!

मान लीजिये, आपने शैशवावस्थामें अपने एक सहपाठीको या सहपाठिनीको बहुत प्यार किया था! आपको यदि आज अपने उस प्रेमपात्र या प्रेमपात्रीसे मिलती-जुलती कोई सूरत दिखलायी दे तो क्या आप स्वभावतः उसकी ओर आकर्षित नहीं होंगे? मनोविज्ञानका यह एक अविसंवादित नियम है कि प्रिय पदार्थोंसे किसी अंशमें भी सम्बन्धित या उनके सदृश पदार्थ प्रिय लगते हैं और अप्रिय पदार्थोंसे सम्बन्धित या उनके सदृश पदार्थ अप्रिय। विदेशमें अपने देशका कोई भी अधिवासी प्रिय लगने लगता है, क्योंकि विदेश-निवास स्वदेश-प्रेमको जागृत करता है और इसीलिये स्वदेशसे सम्बन्धित प्राणी भी प्रिय लगने लगते हैं। प्रिय-पथके रजकण भी कृष्ण-प्रणयिनी गोपिकाओंको स्वर्ण-कणोंसे अधिक आकर्षक प्रतीत होते थे, क्योंकि वे रजकण साधारण रजकण नहीं थे। कृष्ण-पथके रजकण थे! भक्तप्रवर

रसखानको कृष्ण-क्रीड़ास्थलके पाषाणों, विटपी-दलों और विहगों तक से जो प्रेम था, उसका यही कारण है।

प्रेम-पात्रसे थोड़ा-सा भी सादृश्य जिस पदार्थमें होगा, वह हमें प्रिय लगने लगेगा, यह एक ऐसा सत्य है, जिसका खण्डन नहीं किया जा सकता। कृष्ण-प्रेमियोंको गगनकी मेघमाला अवश्य प्रिय लगेगी, क्योंकि, सुना जाता है, वे भी मेघ-श्यामल थे। फरहादको शीरीके देशकी प्रत्येक वस्तु प्रिय लगती थी, क्योंकि वह शीरीकी थी।

जो वस्तु प्रिय होती है, वह असुन्दर नहीं लग सकती। सुना है, माताएँ अपने कुरूप बच्चोंमें भी सुरूप पाती हैं। मजनूँकी लैला, सुना है, काली थी। लेकिन मजनूँको उससे बढ़कर सुन्दर स्त्री कहीं दिखलायी ही नहीं देती थी। उदाहरणोंकी आवश्यकता नहीं है। जीवनके अनुभवोंसे भी इस बातको पूरा बल प्राप्त होता है कि प्रियत्वका जिसमें आरोप होता है, उसमें सौन्दर्य का भी।

लेकिन यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पहले प्रियत्वकी भावनाका आगमन होता है या पहले सौन्दर्यकी भावनाका?

मैं समझता हूं, पहले प्रियत्वका उद्भव होता है; सौन्दर्यकी भावना उसकी अनुगता है। विज्ञान भी बहुत अंशोंमें इसीका समर्थन करता है।

'लेकिन इससे तो सौन्दर्यकी निरपेक्ष सत्ता ही नष्ट हो जाती है!' बहुत से पाठक विस्मयान्वित हो कह उठेंगे!········किन्तु जिस संसारमें हम रह रहे हैं और जिस प्रकारकी हमारी जीवन-धारा है, उसे देखते हुए हम किस चीजको निरपेक्ष कह सकते हैं!

प्रियत्व की भावनाके जागरणके बाद तब सौंदर्यकी भावनाका जागरण होता है, यह अधिकांश व्यक्तियोंको अविश्वसनीय-सा प्रतीत होगा, क्योंकि साधारण दृष्टिसे देखनेपर यही अनुभव होता है कि पहले सौन्दर्यात्मक भावना हममें उत्पन्न होती है, उसके बाद उसके प्रति प्रेमका जागरण होता है। किन्तु गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर प्रियत्वका ही प्राथमिक उद्भव युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

किन्तु इस प्रियत्वकी भावनाका जागरण क्यों होता है?—कैसे होता है? हम देख चुके हैं कि इन्द्रिय-जनित सुखात्मक संवेदन वाला सिद्धान्त मान्य नहीं हो सकता।

ऐसी अवस्थामें क्या यह कल्पना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होती कि हमारे चिरन्तन वासस्थलोंसे इस वर्तमान वासस्थलकी जो दृश्यावली जितना ही सादृश्य रखती है, वह हमें उतनी ही प्रिय लगती है और इसीलिये हम उस में उतना ही सौंदर्य पाते हैं।

आज की यह चन्द्र-ज्योतित यामिनी हमें अतिशय मनोहर प्रतीत हो रही है, क्योंकि यह हमारे नेत्रोंके अनुकूल है और हमारे मस्तिष्ककी शिराओंमें सुखात्मक संवेदन-धारा उत्पन्न करती है, इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है। मेरे कमरेके सामने ये जो विटपी हैं, इनपर जो कनक-सुषमा छायी हुई है—समीपवर्त्ती सरसीकी नीलाभ लहरोंपर जो ज्योत्स्नासव बरस रहा है, वह कलाकार के प्राणोंमें किसी खोये हुए देशकी और किसी चिर सुन्दर जीवन-साथीकी वेदना-मधुर स्मृति जागृत करते समय इस दुनियाँके जिस सत्यको स्पष्ट करता है, विज्ञान और दर्शन अपनी सतत चिन्तनासे उसकी छाया भी नहीं छू सकते!

नेत्रोंके लिये जिस प्रकार सौन्दर्य है, श्रवणोंके लिये उसी प्रकार संगीत। सौन्दर्य नेत्र-पथसे हमारे मस्तिष्ककी शक्तियोंको सजग एवं उद्बुद्ध करता है, संगीत श्रवण-पथसे।

नेत्रेन्द्रिय और श्रवणेन्द्रियका ज्ञानार्जन-महत्व असामान्य है; उसी प्रकार दूरागत सन्देशोंको ग्रहण करनेकी क्षमता जागृत करनेमें भी सौन्दर्य और संगीतकी सहायतासे ये अद्वितीय हैं।

कविता और संगीत दोनोंमें हृदयके स्पन्दन सम्बद्ध रहते हैं। कवितामें प्रधानता हृदयकी होती है, मस्तिष्क उसे साहाय्य प्रदान करता है। संगीतमें प्रधानता कण्ठकी होती है; हृदय उसे साहाय्य प्रदान करता है।

जिस प्रकार सच्चे कविको चारों ओर कविताकी मन्दस्मित-श्री नजर आती है, उसी प्रकार सच्चे गायकको भी चारों ओर गीत-लहरियाँ सुनायी पड़ती हैं। कविको सान्ध्य प्रतीची-क्षितिजकी अरुणिमामें, निशीथके

तारकोंमें, प्राभातिक पद्मोंमें, दूरवर्त्ती विटपी-दलोंमें, चन्द्र-किरणोंसे शृंगारित गिरि-शिखरोंमें कविता दिखलायी देती है और वह उन्हें पढ़ता है, उसी प्रकार सच्चे गायकको विहंगोंके कलरवमें, शिलीमुखोंके मदोन्मत्त गुञ्जनमें, निर्झरीके अजस्र हर-हर रवमें, चंचल सौरभित अनिलके स्पर्शसे काँपते हुए वेतस-वनमें संगीत-ध्वनियाँ सुनायी पड़ती हैं, जिनको वह ध्यानपूर्वक सुनता है और अपने पार्थिव अस्तित्वकी रिक्तताको उनसे भरनेका प्रयास करता है।

समस्त ध्वनियोंको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। एक तो लय और दूसरा रव। इन्हीं दोनोंके सम्मिश्रणसे संगीतकी सृष्टि होती है। रवसे सम्मिश्रित होकर लय जब एक विशिष्ट सीमा तक पहुंच जाती है, तब संगीतकी समुत्पत्ति होती है। कोई भी रव लयसे पूर्ण वियुक्त नहीं हो सकता, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन अधिकांश रवोंमें लय होता है। विभेद केवल न्यूनाधिक्यका ही नहीं, उसके स्वरूपका भी है।

विशिष्ट लय तक पहुंचा हुआ रव एक माधुरीसे भींगकर हमारे प्राणोंको रससिक्त क्यों कर देता है, इसका उत्तर नानाविध प्रणालियोंसे दिया जा सकता है, लेकिन कोई भी उत्तर इस बातका दावा नहीं कर सकता कि वह सही उत्तर है।

जिस प्रकार विशिष्ट रंग और विशिष्ट आकृतियाँ हमारे मस्तिष्कमें सौन्दर्यात्मक संवेदन जागृत करती हैं, उसी प्रकार विशिष्ट लययुक्त रव भी हमारे मस्तिष्कमें संगीतात्मक संवेदन जागृत करता है। और इन दोनोंके जागरणसे दूरागत विचार-तरंगोंको ग्रहण करनेकी क्षमता बढ़ती है।

सौन्दर्य और संगीत इस विचित्र मरुप्रदेशमें तृषा-दग्ध प्राणोंको नीर

प्रदान करनेकी अपूर्व क्षमता रखते हैं। इनके अभावमें इस ग्रहका अन्धकार न जाने कितना गहरा और विघातक हो गया होता !

सौन्दर्यको विश्लेषणात्मक दृष्टिसे देखकर समझनेका प्रयास करना जितना निरर्थक है, उससे कुछ ही कम निरर्थक संगीतको विश्लेषणात्मक दृष्टिसे देखनेका प्रयास भी है।

जो हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि संगीतके द्वारा हमारे मस्तिष्ककी कार्यकरी शक्ति बढ़ती है और इसीलिये हमें दूरागत विचार-तरंगोंको पकड़नेमें इनसे सहायता प्राप्त करनी चाहिये।

शक्ति-वृद्धिकी दुर्निवार कामना भी हमारी इस शक्तिको जागरूक करनेकी क्षमता रखती है ।

वैसे, शक्ति वृद्धिकी कामनाका कोई न कोई स्वरूप मानवी बाल्यावस्थामें ही दिखलायी देने लगता है । अपने अन्य साथियोंको प्रतिद्वन्दिताओंमें परास्त करनेकी ओर औरोंके प्रशंसा-भाजन बननेकी आकांक्षाएँ जागृत होने लगती हैं ।

गुल्ली-डंडाके खेलमें या फुटबॉल प्रभृतिके खेलमें अन्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा अपनेको अधिक शक्तिशाली प्रदर्शित करनेकी ही नहीं, अपितु शक्तिशाली बननेकी भी इच्छा बलवती होने लगती है और व्यक्तिके भावी चारित्रिक विकासमें उससे पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है, क्योंकि मनुष्यका साराका सारा जीवन शक्ति और अशक्तिका क्रीड़ास्थल ही है । कुछ काम ऐसे हैं, जिन्हें हम कर सकते है । कुछ काम ऐसे हैं, जिन्हें हम लाख कोशिश

करके भी नहीं कर सकते। एक विचित्र वेदनाप्रद विवशता और अशक्ततासे आक्रान्त होकर हम विक्षुब्ध हो उठते हैं!

इसके साथ एक प्रकारकी अशक्ति और भी है। कई काम ऐसे हैं, जिन्हें हम करना नहीं चाहते, किन्तु जो हमारी इच्छाके प्रतिकूल होते ही रहते हैं, जैसे कोई अज्ञात शक्ति बलपूर्वक हमसे वे काम करवा रही हो! अनिच्छित कार्योंको करनेकी यह क्षमता भी एक हानिकारक अशक्ति ही है!

कई काम ऐसे हैं, जिन्हें हम कर भी सकते हैं और जिन्हें करनेकी हमारी इच्छा भी है, किन्तु हम नहीं कर पाते। बहुत-से व्यक्ति हैं, जो प्रतिदिन यही सोचकर बिछौनेपर पैर रखते हैं कि कल प्रातःकालीन किरणोंके आलोक-प्रदानके पहले ही उठेंगे और अमृत-सिक्त समीरणका सेवन करेंगे! किन्तु जब रात्रि विदा ग्रहण करनेकी तैयारियाँ कर लेती है और धरित्रीको कोई चुपके-से प्रभातका आगमन-सन्देश सुनाने लगता है, उस समय नींद तो उनकी टूट जाती है, लेकिन वे उठते नहीं।

इसी प्रकारकी अन्य अशक्तताएँ अभ्यासोंमें परिगणित की जा सकती हैं। जिस कामका अभ्यास हो जाता है, वह मानवी व्यक्तित्वका एक अंग-सा हो जाता है। उससे परित्राण पाना कोई साधारण बात नहीं है।

इन अशक्तताओंके अतिरिक्त छोटी-मोटी अन्य अशक्तताएँ भी हैं, जो इतनी महत्वपूर्ण न होते हुए भी वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थाके कारण महत्व-पूर्ण हो गयी हैं। बहुत-से ऐसे कार्य हैं, जो सुगमतापूर्वक किये जा सकते हैं, किन्तु मानव-समाजने अपनेको जिन विचित्र नियम-बन्धनोंसे बाँध रखा है, वे उन्हें नहीं करने देते!

मैं तो समझता हूं, मानव-जातिने अपने हाथोंसे अपने अस्तित्वको

जिन-जिन निरर्थक और हानिकारक बन्धनोंमें बाँधा है, वे कई अंशोंमें उन बन्धनोंसे कुछ कम क्लेशप्रद नहीं हैं, जिनमें प्रकृतिके द्वारा वह बाँधी गयी है !

जो हो, जीवन-पथके समस्त प्रतिरोधोंको—लक्ष्य-प्राप्तिके मार्गमें रोकने वाली समस्त अशक्तियों, दुर्बलताओंको छिन्न-भिन्न करते हुए; प्रतिपल, प्रतिक्षण अपनी सत्तामें अभिनव शक्ति, अभिनव बल और तेजोद्दीप्त कर्मोन्मादनाका सञ्चार करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते रहनेकी ज्वलन्त कामना हमारे मस्तिष्कको वह शक्ति अवश्य प्रदान करती है, जिससे सुदूरवर्त्ती ग्रहोंसे आगत सन्देशोंको हम ग्रहण कर सकें ।

निर्बलता तो हममें आज आयी है । अज्ञानका समुद्भव तो हममें अब हुआ है । सदासे तो हम ऐसे दीन-हीन और अशक्त नहीं रहते आये हैं । अपना सच्चा मार्ग खोकर इस प्रकार चिरकालसे तो हम रोदन-क्रन्दनके सहचर नहीं रहे हैं ! हम सशक्त थे; तेजस्वी थे; हमारा ज्ञान अखण्डित था । हमारी सत्ता राकेश-किरणोंसे शृंगारित होती रहती थी ।

जिस देशको हमने आज अज्ञानवश अपना देश मान लिया है, वह तो विदेश है । जिस व्यक्तित्वको हमने अपना वास्तविक व्यक्तित्व समझ रखा है; वह तो एक आच्छादन मात्र है ! हम कुछ और ही हैं । हमारा देश कोई और ही है ! हमारी राह कोई और ही है !

अपने सच्चे स्वरूपको और अपनी सच्ची राहको पहचाननेके लिये हम जितनी ही शक्तिका विकास करते जायेंगे; हमारा उतना ही कल्याण है । भारतके पुरातन महर्षियोंका 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' वाला सिद्धान्त सर्वथा मान्य है !

निशिवासरके अदम्य उद्योगसे हम इन विविध अशक्तताओं पर विजय

प्राप्त करते जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। सम्पूर्ण विजय तो इस दुनियामें सर्वथा असम्भव है, लेकिन अनेकानेक प्रकारकी हानिप्रद अशक्तताएँ अवश्य हमारा पथ छोड़ देंगी।

सब प्रकारकी अशक्तताओंको पराभूत करनेकी आवश्यकता भी नहीं है। हमें तो केवल उस निविड़ तिमिर-जालको विदारित करते हुए आलोक-धाराका आह्वान करना है, जो हमारे मार्गमें दानवकी भांति छाया हुआ है। अन्य प्रकारकी अशक्तताओंको दूर करनेके प्रयासोंमें अपनी शक्तियोंका अपव्यय निरर्थक सा है!

और जब हम सच्ची एवं अदम्य अनवरोध कामनाको अपने प्राण-प्रदेशमें प्रज्वलित करके अपनी अशक्तियोंका निवारण करनेका अक्लान्त प्रयास करने लगेंगे, उस समय हमारे कार्यमें अनेक बाधाएँ उपस्थित होंगी, किन्तु इसके साथ हमें जो सहायताएं—अदृश्य शक्तियोंके द्वारा हमारे प्राणोंको जो बल प्राप्त होगा, वह सामान्य नहीं!

इस अश्रु-सजल पथमें हमारे शत्रुओंकी संख्या कम नहीं है। हमें बल-पूर्वक उनका सामना करना पड़ेगा। भय और निरुत्साहकी भावनाओंसे यदि हम आक्रान्त हो गये तो हमारा सर्वनाश सुनिश्चित है!

बाहरी शत्रुओंकी अपेक्षा हमारे अन्दरके शत्रु अधिक भयानक—अधिक घातक सिद्ध हो सकते हैं। बाहरके शत्रुओंका सामना करनेमें उतनी कठिनाइयोंका सामना नहीं करना पड़ता, जितना इन अन्दरके शत्रुओंका सामना करनेमें करना पड़ता है!

शायद इसीलिये दुनियांके अनेकानेक महापुरुषोंने आत्म-विजयको इतना दुष्कर कार्य बताया है।

हमें अपने अन्दरके शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनी ही होगी। जब तक हम ऐसा नहीं कर लेते, तब तक हममें उन शक्तियोंका आगमन कठिन है, जिनका होना इस तिमिर-पथको पार करनेके लिये अत्यावश्यक है।

इन अन्दरके शत्रुओंको हम सभी पहचानते हैं और इनके आघातोंसे भी परिचित हैं ! साधना-पथमें ये कितना कटु हलाहल बिखेर दिया करते हैं, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं ! साधक सिहर कर रो उठता है !

लेकिन कठिन होते हुए भी यह विजय अत्यधिक कठिन नहीं है । विजयकी दुर्दान्त इच्छाके साथ ही साथ यदि इस ग्रहके प्रति,—इस जादू भरे सौरमंडल के प्रति एक विरक्तिकी:भावना प्राणोंमें जागृत हो जाय तो विजयका काम सहज हो जाता है । हमारी दुर्बलता वहीं हमें विजित करा देती है जहां इस ग्रहके प्रति हमारे आकर्षणका प्रश्न सामने आता है । शायद इसीलिये योगि-राज पतंजलिने भी चित्तकी वृत्तियोंके निरोधके लिये अभ्यास और वैराग्यका नामोल्लेख किया है ।

लेकिन इस वैराग्य तक पहुंच कर ही यदि हम रुक जाते हैं तो कई ऐसी कठिनाइयां है, जो दूर नहीं हो पाती । वीतरागी होनेके बाद फिर जीवनमें रह क्या जाता है । निष्क्रिय हो कर चुपचाप बैठ रहनेसे बढ़ कर शाप और क्या हो सकता है ।

अतः इसके बाद हमें अपने अस्तित्वको अपार्थिव प्रेमकी चंद्र-किरणोंसे ज्योतित करना चाहिये । ऐसा करनेसे पार्थिव वैराग्यकी तो पुष्टि होगी ही, साथ ही हम अपने लक्ष्यके अधिक निकट पहुंचेंगे । भय और निरुत्साहकी भावनाओंको दूर करनेमें कतिपय प्रणालियाँ अत्यन्त हितकर है ! उन प्रणा-लियोंकी महत्तासे प्राचीन भारतीय ऋषि अच्छी तरह परिचित थे इसीलिये मन्त्र प्रभृतिके प्रतिदैनिक जापका विधान किया गया था ।

प्रतिदिन प्रभातकी सुमनोहर घड़ियोंमें उठ कर यदि हम auto suggestion की प्रणालीसे अपने भीतर तेजका संचार करनेका प्रयास करें

तो अतिशय शीघ्र हमारे पथपर आभा बरस सकती है। वर्त्तमान वैज्ञानिकों ने इस प्रणालीकी महत्ताको चमत्कृत होकर स्वीकार किया है।

इसके अतिरिक्त हिप्नोटिज्मके द्वारा भी इन शत्रुओंको दूर किया जा सकता है। हिप्नोटिज्म नाम भ्रामक है। यह नाम डा० जेम्स ब्रेडके द्वारा आविष्कृत किया गया था। आप मैनचेष्टरके एक चिकित्सक थे। Hypnos से उन्होंने अंग्रेजीमें इसका नाम हिप्नोटिज्म रखा। और उन्होंने हिप्नोटिज्म के सम्बन्धमें जो विचार प्रकाशित किये, उनके कारण यह विद्या कोई उच्च स्थान नहीं प्राप्त कर सकी। लेकिन इसके सम्बन्धमें उनके जो विचार थे, वे सही नहीं। हिप्नोसिसको निद्राकी एक अवस्था समझना सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण विश्वास है। साधारण निद्राकी अवस्थासे हिप्नोसिसमें जो पार्थक्य है, आज्ञाकारिता या विश्वसनीयताकी वृद्धि नहीं है, बल्कि जे० Louis Ortom के शब्दोंमें an increase in the capabilities of actualising what has been suggested है।

वर्तमान युगने ही मानव-जातिके इतिहासमें पहली बार इस विद्यासे अभिज्ञता प्राप्त की है, यह कहना वर्तमान युगकी एक मिथ्या प्रशंसा होगी। प्राचीन ग्रन्थोंके अवलोकनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन सभ्यताओंने भी इस विद्याकी किरणोंसे अपने अस्तित्वको आलोकित एवं सशक्त किया था। मिश्रके निवासी शायद इस विद्यामें अन्य देशवासियोंकी अपेक्षा अधिक प्रवीण थे।

लेकिन वर्तमान युगका यह महान् दुर्भाग्य है कि उसने इस श्रेयस्करी विद्याके महत्वको आंशिक रूपमें भी नहीं समझा। वर्तमान शिक्षा-निकेतनोंमें व्यर्थकी बातोंसे तो विद्यार्थियोंके मस्तिष्ककी शिराओंको श्रम-जर्जरित किया

जाता है, किन्तु इस हितकर विद्याके लिये वहां अभी तक कोई भी स्थान नहीं है। साधारण जनसमाज तो इसके नामसे डरता-सा है।

लेकिन दुनियांके ख्यातनामा वैज्ञानिकोंने इस विद्याके महत्वको पहचाना है और इसकी सत्यतापर प्रकाश भी डाला है। बर्लिनके डा० ग्रासयन और प्रोफेसर अलबर्त माल, जूरिचके प्रोफेसर फॉरेल, बर्नके प्रोफेसर पाल डूब्रीइस, ब्रूसेल्सके डा० वान वोन्सन, म्यूनिचके डा० वान स्वेंकनोटजिंग, एमस्टर्डमके डा० लायड हकी और डा० बामबैल प्रभृति प्रख्यात विज्ञानवेत्ताओंने केवल इस विद्याका पक्ष-समर्थन ही नहीं किया है, अपितु अनेक प्रयोगोंके द्वारा इसकी सत्यताको अधिक स्पष्ट किया है। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके डा० विलियम ब्राउन डी० एस० सी०, एम० डी०, एम० आर० सी० पी० ने १९१४ और १९१८ के बीचमें करीब ६०० रोगियोंको हिप्नोटाइज किया था और इस बातकी बलपूर्वक घोषणा की थी कि हिस्टीरिया, गति-शक्तिका लोप, बोलनेकी शक्तिका अभाव, स्मृतिभ्रंश प्रभृति बीमारियोंको कोई भी व्यक्ति रोगीको हिप्नोटाइज करके दूर करनेमें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त करसकता है।

लेकिन इसमें सफलता प्राप्त करनेके लिये कुछ प्रारंभिक गुणोंपर ध्यान देना आवश्यक है, जिनमें प्रगाढ़ आत्मविश्वास और प्रचण्ड इच्छाशक्ति अनिवार्य हैं। इनके अभावमें इस क्षेत्रमें सफलता प्राप्त करना सर्वथा अशक्य है।

प्रचण्ड इच्छाशक्ति हमें जीवनके समस्त क्षेत्रोंमें प्रचण्ड कार्यशक्तिसे समन्वित करती है। इसका अभाव हमारी शक्तियोंको ही हमसे अपसारित नहीं करता बल्कि हमारे जीवन-पथमें अंधकारको अधिकाधिक घनीभूत करता जाता है।

इच्छाशक्तिके विकास एवं विवर्धनके लिये प्रतिदैनिक अभ्यास हैं, जिनमें सबसे सरल यह है कि आप प्रतिदिन रातको सोनेके पहले यह सोच लीजिये

कि कल आप इतने घंटों तक अमुक कार्य सम्पन्न कीजियेगा। कार्य निर्धारित करते वक्त इस बातपर विशेष ध्यान रखिये कि आपका वह कार्य आपकी तबियतके अनुकूल नहीं है। आपका मन उसमें नहीं लगेगा। फिर दूसरे दिन आप बलपूर्वक उस कार्यको सम्पन्न कीजिये। आपका मन विद्रोह करेगा और आपकी बार-बार यही इच्छा होगी कि कार्य छोड़ दिया जाय! लेकिन आप कार्य तब तक नहीं छोड़ें जब तक कि निश्चित समय न हो जाय। इस प्रकार प्रतिदिन करते जाइये। आरम्भिक एक महीनेमें आपको मनके उस हिस्सेके साथ जो मित्रके रूपमें आपका शत्रु है, घोर संघर्ष करना पड़ेगा,लेकिन पीछे जब आप अभ्यस्त हो जाइयेगा तो आपको संघर्ष नहीं करना पड़ेगा और आप पाइयेगा कि आपकी इच्छाशक्तिमें काफी उन्नति हुई है—आपमें काफी शक्तिका आगमन हुआ है। इस अभ्याससे लाभ ही लाभ है। आप किसी भी क्षेत्रमें क्यों न हों, कुछ कार्य ऐसे अवश्य है जिनसे आपका प्रभूत उपकार हो सकता है, किन्तु आपकी तबियत नहीं होती कि दो चार घंटे एकाग्र होकर उस कामको करें।

जापानके एक सुमहान् दार्शनिक योरीतामा ताशीने इस सम्बन्धमें कई अभ्यास बताये हैं जो बहुत ही उपयोगी हैं। आप बैठ जाइये और एक ग्लास ले लीजिये। पासमें किसी फलके बीज या उसी प्रकारकी कोई और छोटी चीज एक सौ ले लीजिये। फिर एक-एक करके उन्हें हर दो मिनटकी देर पर ग्लासमें डालते जाइये। इस प्रकार दो सौ मिनटोंमें आपका यह कार्य समाप्त हो जाता है। धीरे-धीरे समय बढ़ाते जाइये। इससे एकाग्रता बढ़ेगी और साथ ही साथ मन पर विजय होगी।

प्रचंड इच्छा-शक्ति और प्रगाढ़ आत्मविश्वासकी ही तरह एकाग्रता भी अत्यावश्यक है।

अपनी शक्तियों पर अविश्वास होनेसे और वाह्य प्रतिकूलताओंकी सबलता पर विश्वास होनेसे हृदयमें जिस संवेदनकी उत्पत्ति होती है, वह मस्तिष्कको हीनबल करनेमें अद्वितीय है! हृदयकी भी दुर्बलता एवं अशक्तता इससे उत्पन्न होती है!

इससे आक्रान्त होने पर चेहरेकी अत्यन्त दयनीय-सी आकृति हो जाती है! नेत्रोंकी स्वाभाविक शान्ति और सुन्दरता तिरोहित हो जाती है! हृदय की गति भी अपेक्षाकृत अधिक हो जाती है। बोलोमें भी एक विचित्र-सा परिवर्त्तन हो जाता है!

इस प्रकारके भयभीत व्यक्तिको केवल आकृति देख कर ही पहचाना जा सकता है! ओठ भी उसके सूख जाते हैं और जीभ भी सूख सी जाती है।

एक प्रख्यात मनोविज्ञानवेत्ताकी पुस्तकमें पढ़ा था कि दुनियांके किसी हिस्सेमें अपराधी पहचाननेका एक तरीका यों भी है कि उसे एक मुट्ठा खाद्य

पदार्थ दे दिया जाता है। थोड़ी देर तक मुंहमें रखनेके बाद उसे बाहर निकल वाया जाता है। यदि मुखसे बाहर निकलने पर वह गीला निकला, तब तो वह व्यक्ति छोड़ दिया जाता है और यदि सूखा निकला तो उसको अपराधी समझा जाता है। यह प्रथा है सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण। क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि अपराधीके समान ही निरपराध व्यक्ति भी भयाक्रान्त न हो !

जो हो, भयसे शारीरिक अशक्तिका जो समुद्भव होता है, वह हमारे विकासके लिये अतिशय हानिकारक है। बहुत-से व्यक्ति तो भयके आक्रमणसे मरते हुए भी पाये गये हैं ! जिस चीजका उन्हें भय था, वह तो उनका कोई अनिष्ट नहीं कर पायी, लेकिन इस घातक मानसिक क्रियाने उन्हें नष्ट कर डाला !

बहुत-से व्यक्ति तो भयके अभ्यस्तसे हो जाते हैं। अकारण ही उन्हें भयकी प्रतीति होती रहती है। संगी साथियोंके साथ बैठे हैं या टहल रहे हैं। तरह-तरहकी बातें हो रही हैं। लेकिन साथ ही साथ इनका हृदय एक अज्ञात अनिष्टकी आशंकासे काँप रहा है ! कुछ व्यक्तियोंका भयाभ्यस्त हृदय भयके नित्यनूतन काल्पनिक साधन खोजा करता है ! वे अपने हृदयको लाख समझायें, तू मान जा, क्यों डरता है ? तेरे भयका कारण सर्वथा निराधार है। लेकिन वह नहीं मानता। उसकी समझमें कुछ भी नहीं आता। वह डरता ही रहता है।

ऐसे व्यक्तियोंका जीवन वास्तवमें बहुत दयनीय होता है ! धीरे-धीरे उनका हृदय अपनी स्वाभाविक शक्ति खो बैठता है और अत्यधिक दुर्बल हो जाता है।

बहुत-से व्यक्ति तो बड़े ही विचित्र प्रतीत होते हैं। उनके भयका कारण

वे वस्तुएँ होती हैं, जिनसे अन्य व्यक्तियोंको भयकी तनिक सी भी प्रतीति नहीं होती। लेकिन जिन घटनाओंके उपस्थित होने पर अन्य व्यक्ति भयाक्रान्त हो जाते हैं, उनसे उन्हें तनिक भी भय नहीं लगता।

कई व्यक्ति मृत्युके आगमन-भयसे निरन्तर पीड़ित रहते हैं। ऐसे व्यक्तियोंका जीवन अत्यन्त अशक्त एवं दुःखमय हो जाता है। उन्हें सर्वत्र सन्देह होता है। भोजन करने बैठते हैं तो उन्हें सन्देह होने लगता है, कहीं कोई विषाक्त पदार्थ तो इसमें मिश्रित नहीं हो गया है। विषाक्त पदार्थके सम्मिश्रणके अतिरिक्त अन्य नानाविध सन्देह भी उन्हें भोजन करते समय होने लगते हैं। कहीं इससे पाचन-शक्ति न खराब हो जाय, कहीं यह मेरे रक्तको दूषित न कर दे, इस प्रकारकी नानाविध शङ्काएँ उत्पन्न होती रहती हैं। रास्तेमें जब ऐसे लोग चलते हैं तो सर्पादिककी आशंका उनके हृदयमें विद्यमान रहती हैं। मेरे एक मित्र हैं, जो मोटरोंसे बहुत डरते हैं। मोटरका हार्न सड़क पर बजता है और वे दूकान पर बैठे-बैठे चिहुँक उठते हैं। ट्रेनमें वे रातको कभी यात्रा नहीं करते, क्योंकि उन्हें सदैव इस बातकी आशंका रहती है कि कहीं अँधेरेमें एक ट्रेन दूसरी ट्रेनसे टकरा न जाय। रातको ड्राइवर शराब पीकर गाड़ियाँ चलाया करते हैं, इस कारण उन्हें अधिक भय रहता है कि कहीं ट्रेन उलट न जाय। इसके अतिरिक्त उनका मृत्यु-भय तो नानाविध शाखाओंमें प्रविभक्त होता हुआ नानाविध रूप ग्रहण कर चुका है। एक दिन उनके एक मित्रने उनसे संयोगवश कह दिया—"आप मर जाइयेगा तो क्या होगा?" मित्र महोदयने तो यों ही मजाकमें कहा था, लेकिन उनके हृदयमें खलबली मच गयी। विविध प्रश्नोंकी झड़ी लग गयी। उनके मित्र महोदयको शामत आ गयी। "आपने यह प्रश्न क्यों किया? आपने यों ही

मजाकमें कहा है या सीरियसली कहा है? आपको ऐसे प्रश्नकी अन्तर्प्रेरणा तो नहीं हुई है?" प्रभृति प्रश्नोंसे उस व्यक्तिका दिमाग खराब कर दिया। और अन्तमें उन्होंने उस सज्जनसे अपनी दीर्घजीविताके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करायी, और वह भी अपने सामने। पहले वे स्वयं बोलते जाते थे कि हे ईश्वर! तू...... बाबूको दीर्घजीवी कर; उनका स्वास्थ्य सदैव ठीक रख। उसके बाद साथ वाले सज्जन उसकी पुनरावृत्ति करते थे।

लेकिन इस प्रकारका मरण-भय असाधारण है। इसका इतना उत्कट रूप सर्वत्र देखनेको नहीं मिलता।

मरण-भयसे ही मिलता जुलता है अस्वस्थताका भय। इस भयसे आक्रान्त व्यक्तियोंको स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकोंके पढ़नेमें जो सुख और संतोष प्राप्त होता है, वह अन्य पुस्तकोंसे नहीं। 'हम सौ वर्ष कैसे जीयें,' 'स्वास्थ्य और नीरोगिता', 'आरोग्य-विज्ञान', 'तन्दुरुस्ती हजार न्यामत है', 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है', 'यौवन और स्वास्थ्य', 'रोग और उनके प्रतिकार' प्रभृति पुस्तकें उनके हाथोंमें सदैव दीख पड़ती है। भोजनमें विटामिनका ये लोग बहुत ख्याल रखते हैं। बाजारमें कुछ खानेकी चीजें खरीदने जाते हैं तो विटामिन ए, विटामिन बी, विटामिन सी प्रभृति उनके मस्तिष्कमें मंडराते रहते हैं।

सौन्दर्य-ह्रासका भय कतिपय युवतियोंमें बहुत पाया जाता है। उन्हें सदैव इस बातका भय पीड़ित करता रहता है कि कहीं उनके कपोलोंकी मसृणता न नष्ट हो जाय—कहीं चेचक की बीमारी उन्हें न हो जाय। सौंदर्य को स्थायी रखनेके प्रयासोंमें वे सदैव व्यतिव्यस्त रहती हैं।

भयके ये स्वरूप स्वस्थ मस्तिष्कोंमें नहीं दिखलायी देते। किन्हीं कारणोंसे जब मस्तिष्कमें किसी प्रकारकी आंशिक विकृति उत्पन्न होती है, तब इस प्रकारके भयोंका समुद्भव होता है।

मनुष्यके भावी जीवनके अनेकानेक भयोंका रहस्य उनकी शैशवावस्थामें खोजा जा सकता है। अनेकानेक व्यक्तियोंको जो निरन्तर भयाक्रान्त रहने की आदत पड़ जाती है, उसका भी श्रेय बाल्यावस्थाके संस्कारोंको ही है। बाल्यावस्थासे ही मानवोंको भयातुर रहनेकी बान पड़ने लगती है। पाठशालामें गुरुजीकी बेंतका भय प्रतिदिन रहता है। छुट्टी होने पर सबल बालकोंसे मार खानेका भय भी दुर्बल बालकोंको पीड़ित करता रहता है। घर पर माता-पिताके द्वारा डांटे जानेका भय भी बालकोंको कुछ कम उद्विग्न नहीं करता। परीक्षाका भय भी यदा-तदा उनके सुकुमार हृदयोंको हिला जाता है। भूतप्रेतकी कहायिां सुना-सुना कर घरकी वृद्ध स्त्रियां भी उनके मस्तिष्कमें भयों के कुछ कम बीज आरोपित नहीं करतीं।

अत्यधिक सशक्त शाश्वत व्यक्तित्वके नहीं होने पर ये भय मानवी मस्तिष्कको नानाविध रूपोंमें अभिव्यक्त हो हो कर मरणपर्यन्त सन्त्रस्त करते रहते हैं।

एक सज्जन हैं; मोटे-ताजे। पूंजीपति हैं। तबियत भी मस्त पायी है। लेकिन जब आकाशमें उच्छृङ्खल मेघोंका गर्जन होने लगता है और चपलाका क्षणस्थायी आलोक किसी पथहारा पथिकको ललचाने लगता है, उस समय उनकी विचित्र अवस्था हो जाती है। कमरेके दरवाजे और खिड़कियां बन्द कर ली जाती है। बिछौनेपर पड़ जाते हैं—रजाईसे सारा शरीर ढंक कर। बादलोंकी कड़क उनके हृदयमें भीषण भयका संचार करती है।

इस प्रकारके भयोंका कारण वर्त्तमान युगके मनोविज्ञानवेत्ता दो बतायेंगे। पहला कारण तो उनकी बाल्यावस्थाकी किसी घटनासे सम्बद्ध होगा और दूसरा कारण मानव-जातिकी प्रारंभिक बनेचर अवस्थासे, जब कि मेघ-गर्जन और

तड़ित्कम्पन विस्मयकर प्रतीत होते थे। मैं इन दोनों कारणोंको अधिक महत्व नहीं देता। मैं इस प्रकारके भयोंका कारण पूर्व जीवनोंकी विभिन्न घटनाओंसे सम्बद्ध करता हूं। हो सकता है, पूर्व जीवनमें इस पूंजीपतिके जीवनमें मेघ-गर्जनासे और तड़ित्कम्पनसे कोई भीषण अनिष्ट हुआ हो!

यहां कुछ मनोविज्ञानवेत्ता यह भी कहेंगे कि हो सकता है, उसके मस्तिष्क में कई कारणोंसे ऐसे भाव-चिह्न अङ्कित हो गये हों, जो मेघ-गर्जना या चपला-प्रकाशसे पुनरुज्जीवित हो उठते हों और भयका संचार उसके प्राणोंमें होने लगता हो। लेकिन इन भाव-चिन्होंके अंकनका क्या कारण हो सकता है, इसका उत्तर कोई मनोवैज्ञानिक नहीं दे सकता।

प्रत्येक जीवनके अनुभव चिरंतन व्यक्तित्वके साथ अविच्छेद्य रूपसे सम्बद्ध हो जाते हैं। यदि किसी व्यक्तिकी मृत्यु इस जीवनके पहलेके जीवनमें किसी बाघके द्वारा हुई होगी, तो इस जीवनमें भी वह व्यक्ति बाघकी तसबीरों तक से भयभीत हो सकता है। इस विचित्र भयका कारण वह नहीं जान सकेगा, लेकिन भयसे उसके प्राण-प्रदेशमें एक भीषण कम्पन-सा होता रहेगा। मस्तिष्कके ऊपर जोरोंका आघात लगनेसे जिस व्यक्तिकी मृत्यु हुई होगी, वह इस जीवनमें अपने मस्तिष्कके खराब हो जानेके भयसे संत्रस्त हो सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि विगत जीवनोंके अनिष्टकर अनुभव इस जीवनमें भी भीति-संचार करते रहें। हां, इसकी सम्भावना अवश्य है।

अनेकानेक भयोंका कारण पूर्व जीवनकी दुर्घटनाओंसे ही सम्बद्ध किया जा सकता है। इस जीवनकी घटनाओंमें उसके कारण नहीं मिल पाते। पूर्वजोंसे उस विशिष्ट भयके कारणोंको सम्बद्ध करना अनुमान मात्र है!

वर्त्तमान जीवनमें भी एक बार जिस वस्तुसे व्यक्तिकी महती हानि हो जाती है, वह जीवनके अन्तिम क्षणों तक घृणा, क्रोध या भयकी समुद्भाविका बनी रहती है। व्यक्तित्वके भेदके अनुसार ही इन विभिन्न शत्रुओंका आक्रमण होता है। दुर्बल व्यक्तित्व पर भयका और सबल व्यक्तित्व पर क्रोध या घृणा का आक्रमण होता है।

'दूधका जला मट्ठा भी फूंक-फूंक कर पीता है,' इस कहावतमें भयके ही समुद्भवका एक विशिष्ट रूप अभिव्यक्त है !

भयोत्पत्तिका एक प्रधान कारण अज्ञान भी है ! जिन वस्तुओंसे मानवी हृदय अनभिज्ञ होता है, उनसे उसे डर सा लगता है। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि समस्त अविदित वस्तुएँ भयका ही सञ्चार करें। कुछ अविदित वस्तुएं कौतूहल और जिज्ञासाका भी उद्रेक करती हैं। यह बहुत कुछ अंशों में व्यक्तिके मन पर आधारित है कि उसमें अविदित वस्तुके द्वारा भयका सञ्चार होगा या कौतूहल या जिज्ञासा का ! बाह्य वस्तुके रूपों और क्रियाओंसे सम्बन्धित व्यक्तिके पूर्ववर्त्ती अनुभव भी इसके निर्धारणमें हाथ बँटाते हैं।

गर्जना करनेवाला प्राणी हानिकारक होता है। फलतः दूरस्थ व्योम-प्रान्तमें गर्जना करने वाले अविदित पयोधर भी वनचरोंके लिये भयके कारण हो गये। यदि वे गर्जना न करके कोई ऐसा कार्य करते, जिनसे वनचरोंके सुखात्मक संवेदन सम्बद्ध हैं, तो वे भयके समुद्भावक नहीं होते !

जो हो, भयसे हमारे व्यक्तित्वकी महती हानि सम्पादित होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। मानसिक शक्तियोंका इससे महान् ह्रास होता है और जीवनकी स्वाभाविक प्रफुल्लता तो नष्ट हो ही जाती है। निर्भीक व्यक्ति जितनी तेजस्विताके साथ सफलताका आह्वान करता है भयातुर व्यक्ति असफलता

का ! प्रतिदैनिक जीवनमें हमें इसके अनुभव होते ही रहते हैं। आप अच्छे से अच्छे वक्ता हों, लेकिन यदि व्याख्यानके लिये सभामंचमें खड़े होने पर आपको किसी विशिष्ट व्यक्तिका या जन-समूहका भय मालूम होने लगा तो निस्सन्देह आप सफलतापूर्वक वक्तृता नहीं दे सकेंगे ! आपकी भाषाका प्रवाह परिमंद हो जायगा। आपके भावोंकी श्रृंखला टूट जायगी। वाणीका ओज नष्ट हो जायगा ! इण्टरव्यू प्रभृतिमें अधिकांश व्यक्तियोंकी असफलताका कारण उनकी अयोग्यता और एक दो व्यक्तियोंकी सफलताका कारण उनकी योग्यता नहीं; बल्कि उनकी भयात्मक भावनाओंका न्यूनाधिक्य है। आप बड़ेसे बड़े व्यक्तिसे मिलने जाइये। यदि आप उनके व्यक्तित्वसे भयभीत हो गये तो आप अच्छी तरहसे उनसे बातें भी नहीं कर पाइयेगा। आपके वाक्य लड़-खड़ातेसे प्रतीत होंगे। आपकी योग्यता धूलमें मिल जायगी। परीक्षाओंमें भी भयात्मक भावनाओंसे आक्रान्त होनेके कारण अनेक परीक्षार्थी उत्तीर्ण नहीं हो पाते। द्वन्दयुद्ध प्रभृतिमें भी निर्भीक योद्धाकी ही सफलता-प्राप्तिकी अधिक सम्भावना रहती है। निर्भीकता हमारे प्राणोंको यदि नूतन बल और शक्ति नहीं प्रदान करती तो कमसे कम हमें हीनबल और अशक्त भी नहीं करती। अधिकतर तो निर्भीकतासे प्राणोंको नूतन बलकी ही प्राप्ति होती है। किन्तु भयात्मक भावनाएं हमारे आधे बलका अपहरण कर डालती हैं, इसमें सन्देह नहीं। भयग्रस्त होनेपर आप न अच्छी तरह सोच सकते हैं, न तर्क कर सकते हैं, न लिख सकते हैं ! निर्भीक होकर आप अपने प्रतिपक्षीसे तर्क करना प्रारंभ कीजिये और फिर देखिये कि आपका मस्तिष्क कैसे-कैसे तर्कोंकी और अकाट्य युक्तियोंकी उद्भावना करता है ! लेकिन तनिक सी भी भीतिका सञ्चार होते ही आपके मस्तिष्कमें अशक्तता चली आयेगी।

एक बार भयके उत्पन्न होनेपर फिर वह बढ़ता ही चला जाता है, घटने का नाम नहीं लेता। उसका पथावरोध असम्भव-सा हो जाता है। यत्न करने पर भी उसका निराकरण नहीं हो पाता। इसका कारण यही है कि वह हमारे अस्तित्वके उस भागको सजग एवं सक्रिय कर देता है जो पारिपार्श्विक वातावरणकी अनुकूल विचार-तरंगोंको ग्रहण किया करता है। बाह्य भयात्मक तरंगों से हमारे आन्तरिक भयको पुष्टि प्राप्त होती रहती है और फिर धीरे-धीरे उसका प्रभुत्व-सा हो जाता है।

हमारी साधनाके पथमें हमारे जो कई सुमहान् शत्रु हैं, उनमें भयका स्थान असाधारण है। इसके द्वारा आक्रान्त होनेपर उन्नत विचार-तरंगोंको ग्रहण करनेकी क्षमता नष्ट-सी होती जाती है और यदि ग्रहण करने की क्षमता नष्ट नहीं भी हुई तो भी हम उसका समुचित उपयोग नहीं कर सकते। काल्पनिक भीतियाँ हमारी जीवन-सहचरी बन जाती है।

भयको दूर करनेके उपायोंपर विचार करना परमावश्यक है। शारीरिक अशक्तिसे भी भयका समुद्भव होता है। सशक्त और स्वस्थ व्यक्ति भयके शिकार उतनी जल्दी नहीं हो पाते, जितनी जल्दी अशक्त स्नायु-मण्डलके व्यक्ति। स्नायविक दुर्बलता काल्पनिक भीतियोंकी संगिनी है। अतएव भय के इस शारीरिक आधारको दूर करना आवश्यक है। औषधि प्रभृतिसे स्नायविक शक्तिकी वृद्धि कामना व्यर्थ है। व्यर्थ ही नहीं, हानिकारक भी। स्नायविक दौर्बल्यको दूर करनेके लिये उषः काल की वायुका सेवन एवं कतिपय विशिष्ट प्रकारके फलोंका सेवन आवश्यक है। धारोष्ण दूध भी स्नायुमण्डल को बल प्रदान करता है! लेकिन सबसे अच्छी औषधि इसके लिये है विश्वास की। इस बातका दृढ़ विश्वास कर लेना चाहिये कि अब हमारी

स्नायविक शक्ति बढ़ती जा रही है; प्राभातिक समीरणका संस्पर्श हमारे स्नायुमण्डलको एक अभिनव शक्तिसे संदीपित कर रहा है। विश्वासका प्रभाव स्नायुमण्डलपर बहुत शीघ्र पड़ता है और चमत्कारिक रूपमें। अपनी स्नायविक दुर्बलतापर निरन्तर विचार करते हुए जो व्यक्ति स्नायविक शक्तिकी प्राप्ति के लिये प्रयास करेंगे, उन्हें असफलता ही प्राप्त होगी।

साथ ही, हमें इस बातका पूर्ण प्रयास करना चाहिये कि उत्साह और आशाका हनन करनेवाली भावनाएं हमारा स्पर्श भी नहीं कर पायें। उत्साही और आशान्वित रहनेवाले व्यक्ति पर भयका आक्रमण कठिनाईसे हो पाता है। किन्तु सदैव उत्साह और आशाका जागरण भी बहुत कठिन है। विभिन्न समयोंमें मनुष्यकी मनः स्थितियां विभिन्न रहती हैं, यह एक अनुपेक्षणीय सत्य है। कभी तो अकारण ही हम प्रसन्न हो जाते हैं; अतिशय उल्लसित एवं आह्लादित। कभी हम अकारण ही निरानन्द और खिन्न-से हो जाते हैं; जैसे जीवनका सारा रस निचोड़ लिया गया हो! लेकिन गंभीरतापूर्वक विचार करनेपर इसके सकारणत्वका ज्ञान हो जाता है।

ज्यों-ज्यों इस संसारकी वास्तविकतासे हम अभिज्ञ होते जाते हैं, त्यों-त्यों हमारे भय अपनी संख्या घटाते जाते हैं। अपरिचित, अविजानित वस्तुओंसे मनुष्यके अतिरिक्त अन्य प्राणी भी भयभीत होते हैं।

यह देश है संघर्षमय, इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रत्येक कदमपर हमें अपने विरोधियोंका सम्मुखीन होना पड़ता है। एक मनुष्य इस ग्रहमें दूसरे मनुष्यसे अपनी रक्षा करनेके प्रयासोंमें व्यतिव्यस्त रहता है। काननवासी मनुष्यों का ही नहीं, नगर-निवासियोंका भी यही हाल है। मानवी सभ्यताओंने मानवजातिको अभिनव चिन्तायें प्रदान करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं किया।

विपिनके पशु-पक्षी भी सदैव एक दूसरेके आक्रमण की आशंकासे पीड़ित होते रहते हैं।

ऐसी अवस्थामें इस ग्रहके वातावरणमें भय-प्रधान विचार-तरंगोंका आधिक्य अवश्य होना चाहिये। और इसीलिये अपने मानसिक विकासके लिये एवं दूरागत विचार-तरंगोंको सबलतापूर्वक ग्रहण करनेके लिये अपने मस्तिष्कको भयके आक्रमणसे बचाना ही पड़ेगा।

भयके विपरीत गुणोंका सन्निवेश हमें अधिकसे अधिक मात्रामें करना चाहिये। भयके आक्रमणके समय मस्तिष्कको यथासंभव शान्त रखनेका प्रयास करना चाहिये। शान्त मस्तिष्कमें भयकी विजय कदापि नहीं हो सकती। विशेष करके काल्पनिक भीतियोंसे तो वह व्यक्ति कदापि संत्रस्त हो ही नहीं सकता, जो अपने मस्तिष्कको शान्त रहनेकी क्षमता प्रदान कर सका है!

मानसिक शान्ति मानसिक आलस्यकी परिचायिका नहीं है, जैसा कि कतिपय विचारक सोचा करते हैं। बल्कि यह मानसिक शक्तिकी द्योतिका है। इसे प्राप्त करना साधारण बात नहीं।

लेकिन, इसका यह तात्पर्य नहीं कि जिन व्यक्तियोंमें मानसिक शान्ति नहीं है, वे मानसिक दृष्टिसे अशक्त हैं। प्रतिभाशाली व्यक्तियोंमें बहुत कम ऐसे मिलेंगे, जिनके जीवनमें मानसिक शान्ति रही हो!

जो हो, भयकी भावनाको विदूरित करनेका सर्वश्रेष्ठ उपाय प्रेमपात्रको याद कर लेना है! यह उपाय सब व्यक्तियोंके लिये लाभकारक सिद्ध नहीं हो सकता और न सब व्यक्ति इसका प्रयोग ही कर सकते हैं, क्योंकि प्रेम नामकी चीज से बहुत कम हृदय सच्चे अर्थोंमें परिचित हो पाते हैं! प्रेमपात्रका स्मरण

प्राणोंको एक नूतन बल प्रदान करता है और प्राणोंकी दुर्बलताके ही कारण तो भयका आक्रमण होता है ! प्राणोंमें बलका सञ्चार होने पर भयका टिकना असंभव-सा हो जाता है !

स्वाभाविक शक्तिके अभावमें भी आदमीको भयका शिकार बनना पड़ता है। जिस व्यक्तिके अन्दर जितना ओज और तेजस्विता होगी, वह भयके द्वारा उतना ही कम आक्रान्त होगा। अतः अपने इस सबसे बड़े शत्रु पर विजय प्राप्त करनेके लिये हमें यथेष्ट मात्रामें ओजस्विता और तेजस्विताका संचयन अपने पार्थिव अस्तित्वमें करना पड़ेगा।

ओजस्विताके लिये वीर्यधारण अत्यावश्यक है। भोगी व्यक्तिके साथ ओजस्विताको स्वाभाविक शत्रुता है। 'मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्'— भारतीय ऋषियोंकी यह पुराचीन उक्ति भी बहुत ही सारगर्भित है। वीर्यनाश से शारीरिक एवं मानसिक शक्तियोंका जो भयंकर ह्रास होता है, वह अतिशय करुणोत्पादक है। वीर्यनाश करनेवाले व्यक्तिके जीवनके करीब-करीब सभी क्षण चिन्ताओं, काल्पनिक भीतियोंसे लदे रहते हैं।

किन्तु वीर्य-धारणकी प्रतिज्ञा कर लेना जितना सरल काम है, उतना उसका पालन करना नहीं। ब्रह्मचर्य-पालनके लिये बद्धपरिकर होनेके बाद वासनात्मक प्रवृत्तियोंके जो निर्मम आक्रमण होते हैं, उन्हें निरर्थक करनेके लिये बहुत बड़ी इच्छा-शक्तिकी आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य-पालनके अनेकानेक नियम भारतीय ऋषियोंने वर्णित किये हैं और उनके पालन पर भी जोर दिया है। लेकिन, मेरी समझमें वीर्य-रक्षाका सर्वश्रेष्ठ तरीका यही है कि हम अपने प्राणोंमें अधिकसे अधिक प्रखर प्रेमकी दीपमाला प्रज्वलित करें। प्रेमकी आलोकधाराके सामने काम-प्रवृत्तियाँ तिमिरकी छलनाओंके समान तिरोहित हो

जाती है। साथ ही जीवनका एक सुमहान् लक्ष्य भी होना चाहिये। उस लक्ष्यकी प्राप्ति-कामनासे अस्तित्वके कण-कणको प्रज्वलित कर लेना आवश्यक है। ऐसा हो जाने पर काम-वासनाके आक्रमण सफल नहीं हो सकते !

जो हो, हमें अपने जीवनको इस प्रकारका बना लेना चाहिये ताकि भय का दानव हमें परास्त न कर सके !

सामाजिक भय भी जब तब नानारूपोंमें अभिव्यक्ति पाता रहता है। हमने यदि ऐसा कर दिया तो लोग क्या कहेंगे और हमने यदि ऐसा नहीं किया तो लोग क्या कहेंगे,—इस प्रकारके रूप ग्रहण करके भी भयका दानव हमारे सामने अक्सर आता रहता है।

एकान्तप्रिय व्यक्तियोंकी एकान्तप्रियताके भी दो ही कारण हो सकते हैं। या तो वे व्यक्ति एकान्तप्रिय होते हैं, जिन्हें मानव-समूहसे विरक्ति है या फिर वे जिन्हें मानव-समूहमें भय-सा प्रतीत होता है। इस भयको इस प्रकार के व्यक्ति लज्जा या संकोचके नामसे अभिव्यक्त करते हैं, लेकिन यह है भयका ही एक स्वरूप !

सामाजिक भयसे परित्राण पाना हमारे लिये परमावश्यक है, अन्यथा हमारा अधिकांश समय निरर्थक कार्योंमें ही बरबाद हुआ करेगा ! मानव-समाजने अपनेको जिन विचित्र और कुत्सित नारकीय बन्धनोंमें जकड़ रखा है, उनसे हमें अलग रहते हुए ही चलना है, अन्यथा हम बरबाद हो जायेंगे ! मानव-समाजकी ओरसे हमें बन्धनग्रस्त करनेकी कम कोशिशें नहीं होंगी, किन्तु हमें उनके प्रयासोंको उपेक्षाको दृष्टिसे देखते हुए अपने लक्ष्यकी ओर अनवरत गतिसे बढ़ते जाना होगा ! और इसी निर्भीकतापूर्वक आगे बढ़ते रहनेमें हमारा कल्याण है !

हमारे कपड़े फट गये हैं। अब हम जब तक इन्हें बदल नहीं लेते और सुन्दर वस्त्र नहीं पहन लेते, तब तक लोगोंके सामने कैसे जायें! लोग हमारे बारेमें क्या सोचेंगे! हमारी चप्पल खराब हो गयी है। लोगोंकी दृष्टि यदि इस पर पड़ेगी तो वे हमें तुच्छ समझने लगेंगे! इस प्रकारकी भावनाएँ सामाजिक भयके ही अन्तर्गत हैं। जिन व्यक्तियोंको जीवित रहने और सन्तानोत्पादन करनेके बाद एक दिन चुपकेसे अपने जीवनका दीपक बुझा देना है, वे यदि इन भयोंसे आक्रान्त होते हैं तो उनको कोई विशेष क्षति नहीं होती! लेकिन यदि हम भी इसी प्रकारकी भावनाओंसे अभिभूत हो कर अपनेको निपतित करने लगेंगे तो यह हमारे लिये कुछ कम अनिष्टकर नहीं सिद्ध होगी। लोगोंमें अच्छे कपड़े पहन कर जानेकी इच्छा उत्पन्न होनेसे ही तो काम नहीं चल जायगा। हमें फिर उसके लिये प्रयास भी करना पड़ेगा। रुपये कमाने होंगे। रुपये लिये बिना हमें कोई भी मानव अच्छे कपड़े पहननेके लिये देगा नहीं और रुपये कमानेमें हम अपना जो समय और जो शक्ति बरबाद करेंगे, उसमें तो हम अपनी राहमें दस कदम और आगे बढ़ा सकेंगे!

अच्छे कपड़ोंके पहनने तक और फटे-पुराने कपड़ोंके न पहनने तक ही यदि यह सीमित रहे तब तो कुछ बात भी थी। लेकिन उसके बाद यह सामाजिक भय नानाविध रूपोंमें हमारे सामने उपस्थित होने लगेगा। हमें अपने मकानको सुन्दर और विशाल बनानेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगेगी। अपने अन्य मित्रोंको मोटरों पर घूमते देख कर हमें पैदल घूमना नागवार-सा मालूम होने लगेगा! ट्रेनमें भी सेकंड क्लासमें ही यात्रा करना हमारे लिये आवश्यक-सा हो जायगा। ऐसी स्थितिमें हमारा साराका सारा समय और

हमारी सारीकी सारी कार्यशक्ति धनानर्जनके कार्यमें बरबाद होने लगेगी, जो हमारे लिये केवल निरर्थक ही नहीं, अपितु अनिष्टकर भी है।

हमें क्षणभरके लिये अपने वर्त्तमान वासस्थलकी वास्तविकता और अपने वर्त्तमान जीवनकी नश्वरतासे अनभिज्ञ नहीं होना चाहिये। रहनेके लिये स्वर्ण-खचित महल हों, चाहे तृण-निर्मित उटज,—शयनके लिये कोमल मखमली शय्या हो चाहे एक मामूली सी दरी,—हमें तो अपनी राह पर चलना है,—अपने पथके अन्धकारसे भयभीत न होते हुए अपनी खोयी मंजिलको प्राप्त करना है! रहनेके लिये संयोगवश यदि हमें महल मिल गये हों, तब भी अच्छा और यदि साधारण जीर्ण शीर्ण झोंपड़े मिल गये हों तब भी अच्छा! हम यदि अपने झोंपड़ेको महल बनानेमें लग गये तो हम कहींके न रहेंगे—हमारा दुर्भाग्य हमारा निरन्तर निष्ठुर उपहास करता रहेगा!

भयकी उत्पत्ति अधिकतर रुग्ण ममत्वके आधिक्यसे होती है। योगीश्वर श्रीकृष्णने गीतामें सर्वत्र ममताहीन होकर कार्य सम्पादन करनेका जो आदेश दिया है, वह इसीलिये महत्वपूर्ण है। और सचमुच इस ग्रहसे हमारा सम्बन्ध ही क्या है! यहां की कौन-सी ऐसी चीज़ है, जिसे हम अपनी कह सकते हैं और जिसपर हमारा चिरन्तन अधिकार रह सकता है। यहाँ का कण-कण हमारे लिये अपरिचित है! ऐसी अवस्थामें यदि हम ममताका प्रसार करते हैं तो इसे हमारी विवेकहीनताके अतिरिक्त और कहा ही क्या जा सकता है!

ममतासे भय की उत्पत्ति:नहीं होती, किन्तु जब वह रुग्ण हो जाती है, तब नानाविध रूपोंमें भयके आक्रमण होने लगते हैं! इस ममताको या तो स्वस्थ रूप प्रदान करना चाहिये या फिर गीताकारके आदेशानुसार इसे नष्ट ही

कर डालना चाहिये। इस मायालोकमें रह कर इसे नष्ट करना अधिकांश व्यक्तियोंके लिये असंभव है, अतएव इसका स्वस्थ रूप प्रदान करना ही श्रेयस्कर होगा।

मैं यहां यह नहीं कहता कि ममताका पूर्ण नाश आवश्यक है। इस ग्रह से जहां तक हमारा सम्बन्ध है, हमें ममताका बहिष्करण करना चाहिये, किन्तु उसके बादके जीवनमें तो ममता रसकी अनिन्द्यसुन्दर दात्री बनकर आती है।

ममतासे भय की समुत्पत्ति किस प्रकार होती है, इसपर अधिक प्रकाश डालना निरर्थक है। नित्यप्रति इसके अनुभव होते रहते हैं।

हमें सब प्रकार की भीतियोंसे अपने अस्तित्वको अलग रखते हुए ही इस कंटीली राहमें अपने कदम आगे बढ़ाने होंगे, अन्यथा मंजिलतक पहुंचना तो दूर रहा,—हम यह भी भूल जायंगे कि हमारी कहीं मंजिल भी है।

विस्मरणके इस सुनिविड़ तिमिर-जालको अपसारित करके हमें अपनी सुप्त स्मृतिको सजग करना है। हमें अपना मार्ग पहचानना है। हमें अपने संगी-साथी पहचानने हैं।

विस्मरण और स्मरणके सम्बन्धमें मनोविज्ञानवेत्ताओंने विगत दशाब्दियोंमें पर्याप्त आलोचना प्रत्यालोचना की है। विभिन्न निष्कर्ष भी उन्होंने निकाले हैं। उन निष्कर्षों की सत्यता और असत्यतापर विचार करते हुए हमें भी स्मरण-शक्तिके सम्बन्धमें अपना एक सशक्त विश्वास पोषित कर ही लेना होगा!

यदि स्मरणशक्तिका सम्बन्ध केवल हमारे पार्थिव व्यक्तित्वसे है,—यदि केवल हमारे मस्तिष्कके एक विशिष्ट कोमल भागके द्वारा ही स्मृति की क्रिया सम्पन्न होती है, तब तो इस सम्बन्धमें किसी प्रकार की भी आशाका पोषण करना हमारे लिये निरर्थक है! इस जीवनके उषः कालके पहले वर्त्तमान

शरीर हमारे साथ नहीं था और न यह वर्त्तमान मस्तिष्क ही था और अव सानके उपरान्त भी इनका अभाव हो जायेगा,—या तो चिताकी निष्ठुर लपटें इसका आलिङ्गन करेंगी या कब्रिस्तानकी मिट्टी। फिर हमें स्मरण शक्तिके द्वारा किस सहायताकी आशा हो सकती है ?

लेकिन बात ऐसी नहीं है। मानवी मस्तिष्क और मानवी शरीरके सम्बन्धमें जितनी भी वैज्ञानिक गवेषणाएं अब तक हो पायी हैं और मानव-जातिके कतिपय वैज्ञानिक इस सम्बन्धमें जितना भी ज्ञान प्राप्त कर सके हैं, वह इस बातका बलपूर्वक समर्थन करता है कि स्मरणशक्तिका सम्बन्ध केवल मानवी मस्तिष्कसे नहीं है, बल्कि यह एक आत्मिक क्रिया है।

कतिपय आरम्भिक मनोविज्ञानवेत्ताओंने स्मरणशक्तिके सम्बन्धमें विचार करते समय आत्माको बिल्कुल विस्मृत कर दिया था और इसे विशुद्ध मस्तिष्क-क्रिया समझने लगे थे, लेकिन ज्यों-ज्यों मनोविज्ञानके कदम आगेको बढ़ रहे हैं और मानवी व्यक्तित्वके सम्बम्धमें मानव-जाति अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करती जा रही है, त्यों-त्यों इन आरंभिक भ्रान्त धारणाओंका लोप होता जारहा है।

विभिन्न आत्मिक क्रियाओंके लिये विभिन्न शारीरिक अवस्थाएं आवश्यक हैं। उन विशिष्ट शारीरिक अवस्थाओंके अभावमें वे आत्मिक क्रियाएं अच्छी तरह सम्पन्न नहीं हो पातीं। लेकिन केवल इसीलिये शारीरिक अवस्थाओंको ही इन क्रियाओंका समुद्भावक मानना अविवेकिताका परिचय देता है। तूलिका और रंग ठीक नहीं होनेसे चित्रकार चित्र नहीं बना सकता, इसलिये तूलिका और रंग ही चित्र बनाते हैं, यह निष्कर्ष जिस उन्मादपूर्ण भ्रान्तिका परिचायक है, उसी उन्मादपूर्ण भ्रान्तिका परिचायक उपरोक्त निष्कर्ष भी।

स्मृतिको समझनेके लिये हम उसे तीन भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। (१) अवधारण (२) प्रकटीकरण (३) अभिज्ञा। स्मृतिको इन्हीं तीन भागोंमें विभक्त करके मनोविज्ञानवेत्ताओंने पर्याप्त ऊहापोह किया है और नानाविध निष्कर्षोंपर आधारित सिद्धान्तोंको जन्म दिया है।

ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा बाह्य संसारसे हमारे सम्बन्धकी स्थापना होती है और हमें नानाविध अनुभवोंकी प्राप्ति होती है। ये अनुभव नष्ट नहीं हो पाते। किसी न किसी रूपमें हमारे अन्दर रहते हैं, तभी तो हम इनका पुनरुत्पादन कर पाते हैं। इसे ही अवधारण कहिये। किन्तु अनुभवोंके इस अवधारण का स्वरूप क्या है, इस सम्बन्धमें किसी भी निश्चित मतका निर्धारण सुकठिन है।

चक्षु, स्पर्श, श्रवण प्रभृति इन्द्रियोंसे जो अंकन हमारे मस्तिष्कके विशिष्ट भागमें होते हैं.वे जितने ही स्पष्ट होंगे, हमारी स्मृति उतनी ही स्पष्ट होगी। किन्तु इन अंकनोंका समयके साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। समय ज्यों-ज्यों बीतता जाता है. त्यों-त्यों ये अधिकाधिक अस्पष्ट होते जाते हैं। पुनरावृत्तिके अभावमें बहुतसे तो सर्वथा विलीन हो जाते हैं।

मान लीजिये, अभी आपने एक रूप-रसवती रमणीको देखा। उसकी मूर्ति आपके मानस-पटपर अंकित हो गयी। आप उसे पांच-सात मिनटसे अधिक अपनी नेत्रेन्द्रियका विषय नहीं बना सके। लेकिन उसके चले जानेके बाद भी आप आँखें बन्द करके उसे अपने सामने उपस्थित देख सकते हैं। उस रमणीका जितना स्पष्ट चित्रांकन आपके मस्तिष्कमें होगा, उतनी ही स्पष्ट वह मूर्ति भी होगी जो उसके चले जानेके बाद आपके स्मृति लोकमें अवतरित होगी। अवधारणकी शक्ति सब व्यक्तियोंमें एक सी नहीं होती।

कुछ व्यक्तियोंमें यह शक्ति प्रचुर मात्रामें विद्यमान होती है, कुछ व्यक्तियोंमें अत्यल्प मात्रामें। बाल्यावस्थामें अवधारणकी शक्ति अधिक रहती है, क्योंकि उस समय इस नरक लोककी चिन्ताओं एवं अन्य कुकार्योंसे यह शक्ति परिक्षीण नहीं हो पाती है। साथ ही, मस्तिष्क कोमल भी रहता है।

अवधारणकी शक्ति अधिक न होते हुए भी यदि दृष्ट पदार्थसे किसी प्रकारका प्रणयात्मक या घृणात्मक सम्बन्ध रहा, तो उसकी मूर्त्तिका गहरा अंकन मस्तिष्कमें होता है। सुन्दर पदार्थों या मानवोंको मूर्ति हमारे मानस लोकमें अधिक अच्छी तरह अंकित हो पाती है।

बहुत-से व्यक्तियोंमें तो अवधारणकी शक्ति आश्चर्यजनक मात्रामें विद्यमान रहती है। बाल्यावस्थामें सौभाग्यवश मुझे भी परीक्षा प्रभृतिमें इस शक्तिसे बड़ी सहायता मिलती थी। परीक्षाके एक सप्ताह पहले तक मैं कोर्सकी पुस्तकें नहीं पढ़ता था। वे मुझे सर्वथा नीरस और निरर्थक-सी प्रतीत होती थीं। जब परीक्षा होनेमें केवल एक सप्ताह या डेढ़ सप्ताहका समय अवशिष्ट रहता, तब कोर्सकी किताबोंको ध्यानपूर्वक देखना आरम्भ करता था। परीक्षा-भवनमें जब कोई बात याद नहीं आती तो आँखें बन्द करके स्मृतिके बलपर पुस्तक विशेषको अपने सामने बुलाता था। फिर स्मृतिके ही कोमल करोंसे उसके पन्ने उलटे जाते थे और आवश्यक पृष्ठ सामने आ जाता था। फिर मस्तिष्क पर थोड़ा जोर देनेसे उस पन्नेके अनुच्छेद कुछ-कुछ स्पष्ट हो जाते थे। मैं उन्हें पढ़ने लगता था।

नेत्रेन्द्रियकी अपेक्षा लिखकर मैं अपने मस्तिष्कमें जो अंकन कर पाता था, वे अधिक सहायक होते थे। मैं जिस समय सात वर्षका था, उसी समय

से इतिहास प्रभृति विषयोंको स्लेट पर लिख कर ही मस्तिष्कमें अंकित किया करता था।

मैं यहां अपनी प्रशंसा नहीं कर रहा हूं। अवधारणकी शक्ति किन-किन रूपोंमें अपनी अभिव्यक्ति करती है, इसी पर प्रकाश डालनेके लिये मैंने यह उदाहरण दिया है। हो सकता है, पाठकोंमें ही कुछ व्यक्ति ऐसे निकल जायं, जिनमें गजबकी अवधारण शक्ति हो।

पोंटस बतलाता है कि राजा मिथ्रीडेटस २२ भाषाओं पर आधिपत्य कर चुका था। थेमीस्टोक्लीज यूनानकी राजधानी एथेंसके बीस हजार नागरिकोंके नाम जानता था। कार्डीनल मेजोफैंटी ६६ भाषाएँ समझ लेता था। इसमें ३२ भाषाएँ तो वह खूब अच्छी तरह समझता था। प्रसिद्ध सेनानी जूलियस सीजरके बारेमें कहा जाता है कि वह अपने समस्त सैनिकोंके नाम जानता था। स्कैलीगरने केवल २१ दिनोंमें सारेके सारे होमर-विरचित महाकाव्यको कण्ठाग्र कर डाला था।

जैकैरिक्स डेसने बहुत कम समयमें १८८ अंकोंको याद कर लिया और उसके बाद केवल आदिसे लेकर अन्त तक ही उनकी आवृत्ति करनेमें समर्थ हो सका, ऐसी बात नहीं है; वह अन्तसे आदि तक भी उनकी आवृत्ति सरलता पूर्वक कर सकता था। कहा जाता है कि पूछने पर वह बीचकी संख्याएँ भी बतला सकता था। जैसे, आपने पूछा कि ३५ वीं और ४८ वीं संख्या कौन सी है, वह बिना किसी श्रमके शीघ्र ही ३५ वीं और ४८ वीं संख्याएँ बतला देता। जी० रकल्यूरने भी असाधारण अवधारण शक्तिका परिचय दिया था। उसका जन्म १८७९ में फ्रैंकफोर्टमें हुआ था। उसने २०४ संख्याएं १८ मिनटमें याद कर ली थीं। यूनानके एक गणितज्ञ पेरीक्लीस डियामैंडीने

स्क्वायरमें रखे हुए दो हजार अंक याद कर लिये थे और जहाँके अंक भी पूछे जाते, बता देता था। डियामैंडीकी इस सुमहान् स्मरण-शक्ति पर आश्चर्यित हो कर जब जिज्ञासुवर्गने इसका कारण पूछा, तो उन्होंने बतलाया कि पहले वे समूचे टेबलको अपनी स्मृतिमें फोटोग्राफ कर लेते थे। पहले यह कुछ अस्पष्ट और धुंधला-सा होता था, जैसे किसी मेघमालासे आच्छन्न-सा हो। उसके बाद जिस भागसे वह अभिज्ञ होना चाहता था, वहां अपना ध्यान जोरोंसे केन्द्रित करता था और वह स्थान स्पष्ट हो जाता था। फलतः वहाँ की संख्याओंके पढ़नेमें उसे कोई कठिनता नहीं होती थी।

कभी-कभी किसी पदार्थकी स्मृति-प्रतिमा इतनी सबल हो जाती है कि इच्छा न रहते हुए भी वह साथ नहीं छोड़ती। उसे हटानेका जितना प्रयास किया जाता है, वह उतनी ही स्पष्टतर होती जाती है।

कलाकारोंमें अवधारणकी शक्ति पर्याप्त मात्रामें होती है। विशेष करके चित्रकारोंमें। इस शक्तिके अभावमें चित्रकार अपना कार्य अच्छी तरह नहीं कर सकते। चित्र-कलामें अत्युन्नत पदकी प्राप्तिके लिये यह शक्ति परमावश्यक है। कहानीकारों, उपन्यासकारों और कवियोंको भी इस शक्तिके आधिक्यकी आवश्यकता है। वैसे, इस शक्तिका आधिक्य सहायक तो सबोंका हो सकता है, चाहे वे दार्शनिक हों, चाहे वैज्ञानिक, चाहे व्यापारी।

अवधारण किस रूपमें होता है, यह आज तक निश्चयपूर्वक कोई वैज्ञानिक नहीं जान पाया है। हां, इसके सम्बन्धमें नाना प्रकारके अनुमान अवश्य किये गये हैं। सूखे कोलोडोनके प्लेटको कुछ समयके लिये सूर्य-किरणोंमें रख दीजिये। उसके बाद फिर अन्धकारमें ले आइये। वहां हफ्तों तक उसमें वे अतिशय सूक्ष्म परिवर्त्तन विद्यमान रहेंगे, जो रवि-किरणोंके द्वारा हुए थे।

कतिपय पुनर्कारकोंकी क्रियात्मकतासे प्लेटकी वे अंकनाएं पुनः जागरित हो सकती हैं। कागज पर प्रकाश-प्रकम्पन अंकित हो सकते हैं और कतिपय पुनर्कारकोंके द्वारा वे प्रकटित भी। मानवी-मस्तिष्कमें वाह्य संसारके जो चिह्नांकन होते हैं, उनको इस तरह समझा जा सकता है।

स्नायु-मण्डलके मूल तत्वोंकी उपार्जित गतिविधिमें भी हम अवधारणको सन्निहित कर सकते हैं। प्रत्येक मूल तत्त्वकी आप एक अतिशय सूक्ष्म क्षेत्रके रूपमें कल्पना कर सकते हैं, जो अन्य अनेकानेक विविध दिशाओंके सूक्ष्म क्षेत्रोंसे स्पर्शित, चुम्बित और आलिङ्गित है। किसी एक क्षेत्रका परमाणु-प्रकम्पन समस्त क्षेत्रोंके किसी एक पथको प्रभावित कर सकता है।

आप चुपचाप बैठ जाइये और सोचना शुरू कीजिये। जितने भी विचार आपके मनमें आते जायँ, सबोंको आप एक पन्ने पर लिखते जाइये, अतिशय संक्षिप्त रूपमें। फिर पन्द्रह मिनटके बाद आप उन पर विचार कीजिये। आप पाइयेगा कि आपका प्रत्येक विचार एक दूसरेसे किसी न किसी रूपमें सम्बन्धित है। मान लीजिये, आपके सामने एक गाय आ खड़ी होती है। आप उसे देखते हैं। एकाएक श्रीकृष्ण आपको याद हो आते हैं। इसके बाद एकाएक आपको मनहर बरवेकी याद हो आती है। फिर अपने एक दोस्तकी याद हो आती है, जो अब इस पृथ्वी पर नहीं है। फिर मृत्युकी तसवीरें नयनोंके सामने नाचने लगती हैं। फिर आप सर आलिवर लाजके सम्बन्धमें सोचने लगते हैं, जो योरपकी साइकिकल रिसर्च सोसाइटीके सभापति थे। फिर आपको अपने एक वैज्ञानिक मित्रकी याद हो आती है!

अब आप ही कहिये, कहाँ तो वह गाय और कहाँ वह आपका वैज्ञानिक मित्र! दोनोंमें आपको कोई सम्बन्ध साधारण दृष्टिसे देखनेपर नहीं मिलेगा

स्कायरमें रखे हुए दो हजार अंक याद कर लिये थे और जहांके अंक भी पूछे जाते, बता देता था। डियामैंडीकी इस सुमहान् स्मरण-शक्ति पर आश्चर्यित हो कर जब जिज्ञासुवर्गने इसका कारण पूछा, तो उन्होंने बतलाया कि पहले वे समूचे टेबलको अपनी स्मृतिमें फोटोग्राफ कर लेते थे। पहले यह कुछ अस्पष्ट और धुंधला-सा होता था, जैसे किसी मेघमालासे आच्छन्न-सा हो। उसके बाद जिस भागसे वह अभिज्ञ होना चाहता था, वहां अपना ध्यान जोरोंसे केन्द्रित करता था और वह स्थान स्पष्ट हो जाता था। फलतः वहाँ की संख्याओंके पढ़नेमें उसे कोई कठिनता नहीं होती थी।

कभी-कभी किसी पदार्थकी स्मृति-प्रतिमा इतनी सबल हो जाती है कि इच्छा न रहते हुए भी वह साथ नहीं छोड़ती। उसे हटानेका जितना प्रयास किया जाता है, वह उतनी ही स्पष्टतर होती जाती है।

कलाकारोंमें अवधारणकी शक्ति पर्याप्त मात्रामें होती है। विशेष करके चित्रकारोंमें। इस शक्तिके अभावमें चित्रकार अपना कार्य अच्छी तरह नहीं कर सकते। चित्र-कलामें अत्युन्नत पदकी प्राप्तिके लिये यह शक्ति परमावश्यक है। कहानीकारों, उपन्यासकारों और कवियोंको भी इस शक्तिके आधिक्यकी आवश्यकता है। वैसे, इस शक्तिका आधिक्य सहायक तो सबोंका हो सकता है, चाहे वे दार्शनिक हों, चाहे वैज्ञानिक, चाहे व्यापारी।

अवधारण किस रूपमें होता है, यह आज तक निश्चयपूर्वक कोई वैज्ञानिक नहीं जान पाया है। हां, इसके सम्बन्धमें नाना प्रकारके अनुमान अवश्य किये गये हैं। सूखे कोलोडीनके प्लेटको कुछ समयके लिये सूर्य-किरणोंमें रख दीजिये। उसके बाद फिर अन्धकारमें ले आइये। वहां हफ्तों तक उसमें वे अतिशय सूक्ष्म परिवर्त्तन विद्यमान रहेंगे, जो रवि-किरणोंके द्वारा हुए थे।

कतिपय पुनर्कारकोंकी क्रियात्मकतासे प्लेटकी वे अंकनाएं पुनः जागरित हो सकती हैं। कागज पर प्रकाश-प्रकम्पन अंकित हो सकते हैं और कतिपय पुनर्कारकोंके द्वारा वे प्रकटित भी। मानवी-मस्तिष्कमें वाह्य संसारके जो चिह्नांकन होते हैं, उनको इस तरह समझा जा सकता है।

स्नायु-मण्डलके मूल तत्वोंकी उपार्जित गतिविधिमें भी हम अवधारणको सन्निहित कर सकते हैं। प्रत्येक मूल तत्त्वकी आप एक अतिशय सूक्ष्म क्षेत्रके रूपमें कल्पना कर सकते हैं, जो अन्य अनेकानेक विविध दिशाओंके सूक्ष्म क्षेत्रोंसे स्पर्शित, चुम्बित और आलिङ्गित है। किसी एक क्षेत्रका परमाणु-प्रकम्पन समस्त क्षेत्रोंके किसी एक पथको प्रभावित कर सकता है।

आप चुपचाप बैठ जाइये और सोचना शुरू कीजिये। जितने भी विचार आपके मनमें आते जायें, सबोंको आप एक पन्ने पर लिखते जाइये, अतिशय संक्षिप्त रूपमें। फिर पन्द्रह मिनटके बाद आप उन पर विचार कीजिये। आप पाइयेगा कि आपका प्रत्येक विचार एक दूसरेसे किसी न किसी रूपमें सम्बन्धित है। मान लीजिये, आपके सामने एक गाय आ खड़ी होती है। आप उसे देखते हैं। एकाएक श्रीकृष्ण आपको याद हो आते हैं। इसके बाद एकाएक आपको मनहर बरवेकी याद हो आती है। फिर अपने एक दोस्तकी याद हो आती है, जो अब इस पृथ्वी पर नहीं है। फिर मृत्युकी तसबीरें नयनोंके सामने नाचने लगती हैं। फिर आप सर आलिवर लाजके सम्बन्धमें सोचने लगते हैं, जो योरपकी साइकिकल रिसर्च सोसाइटीके सभापति थे। फिर आपको अपने एक वैज्ञानिक मित्रकी याद हो आती है।

अब आप ही कहिये, कहाँ तो वह गाय और कहाँ वह आपका वैज्ञानिक मित्र! दोनोंमें आपको कोई सम्बन्ध साधारण दृष्टिसे देखनेपर नहीं मिलेगा

लेकिन इन दोनोंकी मध्यवर्त्तिनी विचार-तरंगोंको देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस वैज्ञानिक मित्रकी याद दाल भातमें मूसलचन्दकी तरह वहाँ नहीं आयी है। गायको देखनेसे आपको श्रीकृष्णकी याद हो आयी, क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण गायें चराते थे। उनकी किशोरावस्था गोपालके रूपमें ही व्यतीत हुई थी। श्रीकृष्णकी याद होते ही आपको उनकी मनमोहक बाँसुरीकी याद हो आती है। श्रीकृष्णसे और उनकी मुरलिकासे अविच्छेद्य सम्बन्ध है। मुरलिका की याद आते ही मनहर बरबेकी याद आ जाती है, क्योंकि वे बाँसुरी बजाने में बड़े प्रवीण थे। उनकी याद आते ही आपको वह भवन याद हो आता है, जहाँ आप अपने किसी मित्रके साथ मनहर बरबेकी कुशलता देखने गये थे। मित्रकी याद होते ही मृत्युकी याद हो आती है, क्योंकि वे अब इस दुनियाँमें नहीं हैं। यदि वे जीवित रहते तो मृत्युकी याद नहीं आती, किसी और ही चीजकी याद आती। मृत्युकी याद भी आ सकती थी,यदि आपसे उनका कभी मृत्युके सम्बन्धमें तर्क वितर्क हुआ होता या उनसे मृत्युकी घटनाका कोई संबंध होता। उसके बाद सर आलिवर लाजकी याद आयी, क्योंकि मृत्युके बादकी जीवनकी उन्होंने पर्याप्त गवेषणाएँ की थी। लाजकी याद आते ही वैज्ञानिकताकी याद आती है और फिर जिस बन्धुकी याद आती है, उनका पार्थिव अस्तित्व वैज्ञानिकतासे सम्बद्ध है, इसीलिये उनकी याद हो आती है।

इस तरह हम देखते हैं कि हमारी स्मृतिकी लहरोंमें सर्वत्र एक सम्बन्ध हैं। एक लहर: दूसरी लहरको जागृत करती चलती है। प्रत्येक लहरका दूसरी लहरसे सामीप्य-सम्बन्ध है। सरोवरमें एक पत्थर डाल दीजिये। उसमें जो वीचिप्रसार होगा, वह पत्थर डाले जानेवाले स्थानसे हो कर क्रमशः तट-चुंबन करेगा। दावात आँखोके सामने आनेसे दावातकी दूकान याद आ सकती

है, स्याही याद आ सकती है (यदि उसमें स्याही न हो), किसी महान कलाकारकी याद आ सकती है, महर्षि वेदव्यास भो याद आ सकते हैं। तलवार देखनेसे आल्हा ऊदल भी याद आ सकते हैं या कोई गुण्डा भी। या कोई कायर धनपति भी याद आ सकता है, जो तलवार देखते ही भयसे कम्पित हो उटता हो! लेकिन जितनी भी स्मृतियां जागृत होंगी, सबोंमें पहली स्मृतियोंसे किसी न किसी प्रकारका सम्बन्ध अवश्य होगा।

मानवी मनकी इस विशेषता पर अरस्तूके समयसे ही विचार हो रहे हैं और कतिपय निष्कर्ष भी निकाले गये हैं। विचारोंकी इस सम्मिलन-पद्धतिके कई स्वरूपोंका ज्ञान प्राप्त हुआ है, जिनमें सबसे अधिक महत्त्व सामीप्यका है। बाह्य-संसारसे जो-जो अनुभव हमें प्राप्त होते रहते हैं, उनमें किसी एकके जागरणसे सर्वाधिक समीपस्थ अन्य अनुभवके जागरणकी अधिक सम्भावना रहती है। किसी प्रासादको देखकर उस प्रासादाधिपतकी स्मृतिके जागरणकी सम्भावना अधिक रहती है। बिछौनोंको देख कर शयनकी स्मृतिका जागरण हो ही जाता है।

किन्तु यहाँ एक बात विचारणीय है। प्रासादको देखनेसे केवल प्रासादाधिपति या प्रासाद-निवासियोंकी ही स्मृतिका जागरण हो,यह आवश्यक नहीं है। किसी हत्या-काण्डकी भी स्मृति जागृत हो सकती है। किसी सुप्रसिद्ध अभिनेत्रीकी रूप-श्री भी नेत्रोंके सामने उपस्थित हो सकती है! किसी बन्दीकी भी याद आ सकती है। कोई उटज भी याद हो आ सकता है! इन समस्त स्मृति-जागरणोंमें सामीप्यका नियम कहाँ काम कर रहा है?

फलतः हमें यह मानना पड़ता है कि विचार-लहरोंके इस उत्थान-पतनमें अन्य कई नियमोंकी भी प्रधानता है। इनमें पुनरावृत्ति, नवीनता, प्रखरता,

गंभीरता, स्पष्टता, मनः स्थिति, संवेदनात्मक सादृश्य प्रभृतिके नियम बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।

मान लीजिये, आपको एक साथ कई अनुभव हुए हैं। अब इनमेंसे कुछ अनुभव तो केवल एकबार हुए हैं और कुछ बार-बार। अतएव किसी एक अनुभवके जागरण पर समीपस्थ उन्हीं अनुभवोंके जागरणकी अधिक सम्भावना रहती है, जिनकी आवृत्ति अनेक बार हुई है। जैसे आपको पेड़ पर चढ़कर इमलियाँ तोड़ता हुआ एक किशोर दीख पड़ा। ऐसी अवस्थामें आपको अन्य अनेक बातें याद आ सकती हैं। लेकिन यदि आपने लड़कपनमें जब-जब वृक्षपर चढ़कर फल तोड़नेका प्रयास किया होगा, तब-तब पिताजीकी डांट-फटकार सुननी पड़ी होगी तो हो सकता है, आपके मनमें वही स्मृति जागृत हो। जो व्यक्ति जिस चीजका अभ्यस्त हो जाता है, उसे सर्वत्र उसी विषयकी याद आती है, जब वह उस विषयसे सम्बद्ध कोई अन्य वस्तु देखता है।

पुनरावृत्तिके उपरान्त नवीनताके नियमका स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि किसी अनुभवसे सम्बद्ध अन्य अनुभवोंमें कोई सर्वाधिक नवीन हो तो यह कोई आश्चर्य नहीं कि उसीका जागरण सर्वप्रथम हो। नवीनता पुनरावृत्तिके नियमसे अधिक सशक्त प्रतीत होती है।

प्रखरता, गंभीरता और स्पष्टता भी अनुभव-जागरणमें बहुत ही महत्व-पूर्ण स्थान रखती हैं। पुनरावृत्ति और नवीनता इनके सामने हतप्रभ हो जाती हैं। किसी अनुभवकी कितनी ही पुनरावृत्ति ही क्यों न हुई हो या वह कितना ही नवीन क्यों न हो, यदि कोई दूसरा अनुभव उससे अधिक प्रखर और सुनिविड़ हुआ, तो उसीके जागरणकी अधिक संभा-

वना रहती है। मान लीजिये, एक व्यक्तिने वृक्षपर चढ़कर आम तोड़ते हुए किशोर को वृक्षसे गिरकर बुरी तरह आहत होते हुए देखा है! और उस दृश्यसे उनके कोमल-करुण मनपर बहुत प्रभाव पड़ा है! अब वे यदि किसी किशोरको वृक्षपर चढ़कर फलादिक तोड़ते हुए देखेंगे तो उसी दृश्यकी स्मृति के जागरणकी अधिक सम्भावना रहेगी! पुनरावृत्ति और नवीनता अनुभव की प्रखरताके सामने हतप्रभ हो जाती हैं!

विभिन्न मनः स्थितियोंका और संवेदनात्मक आनुकूल्यका भी विचार-तरंगोंके इस सम्मिलनात्मक प्रवाहपर कम प्रभाव नहीं पड़ता। उदास और खिन्न मानसिक अवस्थामें उदास और खिन्न अनुभवोंके ही जागरणकी पूरी संभावना रहती है और प्रसन्न और उल्लसित मानसिक अवस्थामें प्रसन्न और उल्लासित अनुभवोंके जागरण की। यही कारण है कि जब हम उदास रहते हैं,—जब हमारे प्राण किसी अविजानित वेदनाके शराघातसे विकल होते रहते हैं, उस समय लाख कोशिश करके भी हम हर्षोल्लासभरित भावनाओंको आमन्त्रित नहीं कर पाते। अनेकानेक विद्वानोंने मानव-समाजको यह उपदेश तो दे दिया कि सदैव प्रसन्न रहा करो। जिस समय दुःखोंका आक्रमण तुम्हारे मानस-लोकपर हो, उस समय सुखात्मक अनुभवोंको याद करो। तुम्हारी चिन्ताएँ कपूरायित हो जायँगी। किन्तु उन्होंने दुःखात्मक अनुभव-जागरणों को पराभूत करके सुखात्मक अनुभव-जागरण की कठिनतापर ध्यान नहीं दिया।

जवाहरलाल नेहरूको भारतके महापुरुषके रूपमें श्रीयुक्त कभी जानते हैं, और उनका बहुत आदर भी करते हैं, लेकिन यदि किसी कारणवश पारस्परिक वार्त्तालापके समय नेहरूजी अपने जन्मजात स्वभावके कारण उसे कुछ खरी-खोटी सुना दें, और वह उनसे मन ही मन अप्रसन्न हो जाय तो काफी समय

तक नेहरूजोके सद्‌गुणोंके सम्बन्धमें विचार करना उसके लिये कठिन हो जायगा। दुर्गुण स्वयं एकके बाद एक उसके स्मृति-पटल में आने लगेंगे—सर्वथा अनाहूत, अनिमंत्रित। इस प्रकारके अनुभव लोगोंको सदैव होते रहते हैं। केवल सावधानीके साथ और गंभीरतापूर्वक आत्म-निरीक्षण करनेसे इस सिद्धान्तकी सत्यता स्पष्ट हो जायगी। प्रेमी व्यक्ति अपनी प्रेयसीके दुर्गुणोंकी ओर ध्यान नहीं दे पाते! निरन्तर उसकी सुन्दरता की ही विचार-तरंगे उनके मानस-सरोवरमें समुत्थित होती रहती हैं। प्रेयसियोंके जीवन-क्षितिजकी मेघमयी कालिमाकी ओर उनका ध्यान नहीं जा पाता। उनके जोत्स्ना-धौत स्वर्ण-सौंदर्यसे ही उनके मन-प्राण उन्मादना-विभोर होते रहते हैं। यहां भी यही नियम काम करता है।

विचार-तरंगोंके इस सम्मिलनका स्वरूप क्या है, इस सम्बन्धमें प्राचीन मनोवैज्ञानिकोंकी जो धारणाएँ थीं, वे अब अनेकांशमें खण्डित हो चुकी हैं। बहुत कम मनोवैज्ञानिक इन्हें उस रूपमें मानते हैं, जिस रूपमें प्राचीन मनो-विज्ञानवेत्ता मानते थे।

पुनरावृत्ति, नवीनता, निविड़ता, प्रखरता, विभिन्न मनः स्थिति प्रभृतिपर आधारित यह विचार-सम्मिलन-क्रिया क्या है, इस सम्बन्धमें वर्त्तमान मनो-वैज्ञानिकोंका कहना है कि यह मस्तिष्कके कोर्तक्सके स्नायविक मूलतत्वोंमें होता है, विचारोंमें नहीं। Titchener नामक प्रख्यात मनोवैज्ञानिकने अपनी एक पुस्तकमें लिखा है—Let us call the brain-processes that are correlated with mental processes psychoneural processes. Then we may say: when a number of psychoneural processes, all of which are rein-

forced and all of which stand alike under the directive influence of a nervous disposition, occur together under certain favourable conditions, then associative tendencies are established among them, such that the recurrence of any one tends to involve, according to circumstances, the recurrence of the others.

इस सिद्धान्तकी सत्यताको स्वीकार करनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। हमारा वर्त्तमान अस्तित्व न केवल आत्मा कहनेसे समझा जा सकता है और न केवल शरीर कहनेसे। दोनोंके क्रियात्मक सहयोगसे ही अधिकांश समुन्नत क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं।

Fouillea नामक एक मनोवैज्ञानिकने इस सम्बन्धमें अपनी विचाराभिव्यक्ति करते हुए लिखा है——Every presentation tends to associate with other presentation on account of the identity of their seat in the brain..............contiguity in time links thing only by means of a contiguity in extension of the brain. Thus are established in the nerve-paths, as on the rail-roads, junctions analogous to those where the switchman determines the course of the trains.

जो हो, mental switchman की अनिवार्य आवश्यकता है, अन्यथा कुछ भी नहीं हो सकता। पाठक स्वयं विचार करें कि आखिर यह mental switchman कौन है।

वाह्य संसारकी प्रतिमाओंके पुनर्प्रकटीकरणके लिये सेरीब्रल केन्द्रोंका स्वास्थ्य सर्वथा आवश्यक है, अन्यथा यह कार्य दुष्कर ही नहीं, असम्भव-सा हो जाता है। शीर्षासन प्रभृति यौगिक क्रियाओंका महत्व इसीसे है। रुधिर-संचारके अभावको ये क्रियाएँ अनेकांशमें दूर करती हैं, किन्तु केवल इन क्रियाओंका यह लाभ देखकर इनका अभ्यास करना हानिकारक सिद्ध हो सकता है। ठीक तरहसे शीर्षासन करनेसे जितना लाभ नहीं होता है, शायद उससे अधिक हानि गलत तरीकेसे इसका अभ्यास करनेसे हो जाती है।

जो हो, सेरीब्रल केन्द्रों तक समुचित रक्तका पहुंचना अत्यावश्यक है।

साथ ही, गति-शक्ति-सम्पन्न इन सम्मिलनोंके कार्यमें जिस चीजसे भी बाधा पहुंचेगी, वह स्मृतिको हीनबल करेगी और जिन चीजोंसे सहायता, वे उसे सशक्त करेंगी—उसकी पथ-प्रशस्तिमें भी सहायक सिद्ध होंगी।

प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता Fouillea ने इस सम्बन्धमें अपनी एक पुस्तक में लिखा है—"Every Pres entation leads to association.

पुनप्रकटीकरण किस प्रकार होता है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्धमें नानाविध अनुमान अवश्य किये गये हैं, लेकिन प्रत्येक अनुमान कई विवशताओंकी लौह शृंखलाओंसे जकड़ा हुआ है। किसी मनोवैज्ञानिकने इसे गति-शक्ति-सम्पन्न सम्मिलनके रूपमें समझनेका प्रयास किया है तो किसीने दुर्बलतर प्रतिध्वनियोंके रूपमें इन्हें स्थायी और समान प्रकम्पनोंके अग्रीकरणके रूपमें पाया है।

मस्तिष्कके किसी एक स्थानकी क्रियाका परिमाण अन्य समस्त स्थान-क्रियाओंसे प्रभावित होता है। हां, अन्य स्थान-क्रियाओंकी निविड़ता और

पुनरावृत्तिका स्थान भी इस सम्बन्धमें बहुत महत्वपूर्ण है। साथ ही विघ्नकर परिस्थितियों एवं उपादानोंके न्यूनाधिक्यका भी प्रभाव साधारण नहीं पड़ता।

जो हो, ये समस्त सिद्धान्त अतिशय अशक्त हैं। वास्तविक क्रिया किस प्रकार सम्पन्न होती है, इसे वैज्ञानिक जगत् अभी नहीं जान पाया है। और तबतक जान भी नहीं सकेगा, जबतक वह पार्थिव व्यक्तित्व और अपार्थिव व्यक्तित्वके संश्लेषणके सिद्धान्तको स्वीकार नहीं कर लेता।

स्मृतिके प्राण अवधानमें बसते हैं। अवधानके अभावमें स्मृतिका अभाव अवश्यम्भावी है।

स्मृतिके लिये ही नहीं, ज्ञानेन्द्रियोंकी क्रियाके स्वस्थ सम्पादनके लिये भी अवधान आवश्यक है। मान लीजिये, आप किसीकी बातें सुन रहे हैं। एकाएक आपका ध्यान किसी दूसरी ओर चला जाता है। आप किसी अन्य व्यक्ति या घटनाके सम्बन्धमें सोचने लगते हैं। अब यह सुनिश्चित है कि जितनी देर अपका ध्यान उस ओर रहेगा, उतनी देर आप उस व्यक्तिकी बातें नहीं सुन सकते।

बड़े-बड़े वैज्ञानिक, कवि या दार्शनिक जब अपने कार्यमें व्यस्त रहते हैं, उस समय उनके पाससे भारीसे भारी जुलूस निकल जाता है और उन्हें पता भी नहीं लगता। इसका कारण यही है।

वैज्ञानिकों, कवियों और दार्शनिकोंमें अवधानकी शक्ति अत्यधिक होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे समस्त विषयोंमें अपने ध्यानको केन्द्रित कर सकते हैं। जिन विषयोंमें उनकी पर्याप्त अभिरुचि होती है, वे ही उनके ध्यानको बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित कर पाते हैं। जिन विषयोंमें इन प्रतिभाशाली व्यक्तियोंकी अभिरुचि नहीं होती,

उनमें ये उतना भी अवधान केन्द्रित नहीं कर सकते, जितना साधारण मनुष्य कर सकते हैं।

साधारण मनुष्य सिनेमा देखने जायँगे तो खूब मन लगा कर आदिसे अन्त तक देखेंगे। किसीकी बातें सुनेंगे तो वक्ता चाहे जितना भी नीरस क्यों न हो, उसकी बातें वे सुन लेंगे। उसकी बातों पर ध्यान देनेमें उन्हें कष्ट होगा, किन्तु फिर भी उनका मस्तिष्क उस कष्टको स्वीकार कर लेगा।

लेकिन प्रतिभाशाली व्यक्तियोंमें आप यह नहीं पाइयेगा। नीरस विषयोंमें वे अपना मन बिल्कुल नहीं लगा सकते! यहाँ नीरस सापेक्षिक अर्थमें व्यवहृत है। जिस प्रकार साधारण व्यक्तियोंके लिये दार्शनिकों और वैज्ञानिकोंके ग्रन्थ नीरस होते हैं,—उनके वार्त्तालाप नीरस होते हैं,—उनके चिन्तनका विषय नीरस होता है, उसी प्रकार दार्शनिकों और वैज्ञानिकोंके लिये साधारण व्यक्तियोंके क्रिया-कलाप नीरस होते हैं। मुद्राके एकत्रीकरण-कार्यमें साधारण व्यक्ति जितना रस पाते हैं, वैज्ञानिक और दार्शनिक उसका सहस्रांश भी नहीं पाते। ग०

अधिकांश कलाकारों और दार्शनिकोंके कमरे सजे हुए नहीं रहते। उनकी चीजें भी सुव्यवस्थित रूपसे रखी हुई नहीं रहतीं। इसके अन्य कारण भी है, इसमें कोई सन्देह नहीं। और उन कारणोंमें धनाभाव भी एक प्रमुख कारण है क्योंकि धनार्जन करनेके लिये इस ग्रहमें जिस प्रकारकी जीवनचर्या अपनानी पड़ती है, वह कलाकार और दार्शनिककी छाया भी नहीं छू पाती! किन्तु इन समस्त कारणोंसे अधिक महत्वपूर्ण कारण यह है कि अपने विशिष्ट विषयोंको छोड़कर अन्य कार्योंमें उनकी अभिरुचि नहीं रहती, फलतः उस ओर वे ध्यान नहीं दे पाते!

बहुत-से प्रतिभाशाली व्यक्ति इस बातकी पूरी इच्छा करते हैं कि उनके कमरे साफ और सजे हुए हों,—उनकी पुस्तकें और कागज प्रभृति ठीक तरहसे आलमारियोंमें औ मेजमें रखे हु ! हों, लेकिन वे केवल इच्छा ही करके रह जाते हैं। उनकी इच्छा बहुत कम कार्यमें परिणत हो पाती है। इसका कारण यह है कि आरंभिक अवस्थामें तो वे इन साधारण कार्योंकी ओर अन्यत्र प्रगाढ़ अभिरुचि होनेके कारण ध्यान नहीं दे पाते, फिर धीरे-धीरे इन कार्योंकी अवहेलना आदतके रूपमें परिणत हो जाती है।

किस एक विषयमें ध्यानको अधिक समय तक केन्द्रित कर सकनेकी क्षमता जिन व्यक्तियोंमें होती है, वे सौभाग्यशाली हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। बहुत-से व्यक्ति तो स्वभावसे ही इस प्रकारके होते हैं। उन्हें इसके लिये कोई विशिष्ट अभ्यास नहीं करना पड़ता। वे काफी देर तक किसी एक विषयमें अपने ध्यानको केन्द्रित रख सकते हैं।

कई मानसतत्त्ववेत्ताओंने इस शक्तिको अभ्यासकी अनुवर्त्तिनी बतलाया है। और यह सम्भव है कि अभ्यासके द्वारा वे व्यक्ति, जिनमें ध्यानके केन्द्रीकरणकी क्षमता अत्यल्प है, कुछ अंशोंमें शक्ति-वृद्धि कर सकें, लेकिन इससे अधिक लाभ की संभावना कम दीखती है। भारतीय ऋषियोंने इस सम्बन्धमें अनेक उपायोंका प्रचलन अपने युगमें किया था, जिनमें किसी दूरस्थ विन्दुपर या नासिकाके अग्र भाग पर नेत्रकी संस्थिति का प्राधान्य है। ये उपाय चित्त को एकाग्र करनेमें भले ही कुछ सहायता प्रदान कर दें लेकिन नेत्रोंके लिये हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। जिन व्यक्तियोंका चित्त जल्दी एकाग्र नहीं हो पाता, उनके लिये एक उपाय मैंने सोचा है। और यह उपाय अन्य उपायोंकी तरह कठिन और नीरस नहीं है। सूर्योदयके पहलेका समय सर्वाधिक उपयुक्त

होगा, क्योंकि इस समयका प्रशान्त वातावरण मानसिक एकाग्रताकी उपलब्धिके लिये बहुत ही अच्छा होता है। साथ ही इस समयके समीरणमें भी मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करनेकी क्षमता विद्यमान रही है। आप किसी स्थान पर शान्तिपूर्वक आरामके साथ बैठ जाइये और किसी अतिशय सुन्दर स्त्री या पुरुषके चित्रको अपनी स्मृतिके पटलपर अंकित कीजिये। उसे आप जितने भी स्पष्ट रूपमें देख सकें, देखने की कोशिश कीजिये। उसके विभिन्न अंगों की म्रदिमा, सुन्दरता और विमोहकतापर विचार करते जाइये। इस प्रकार प्रतिदिन किसी न किसी सुन्दर स्त्री-पुरुषको आप सायन्तन भ्रमणके समय देखिये और इस उषः कालीन अभ्यासके समय अपनी स्मृतिके पथपर उसको अंकित करनेका प्रयास कीजिये। और फिर उसके विभिन्न अंगोंकी चारुता एवं कमनीयतापर विचार करते हुए मुग्ध होते रहिये। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि आप जिस समय उसका ध्यान कर रहे हैं उस समय यह भूल जायं कि आप चित्तकी एकाग्रताका अभ्यास कर रहे हैं, क्योंकि जहां आपने ऐसा सोचा कि आपका चित्त आपको अन्यत्र ले जायगा। चित्तको एकाग्र करनेमें यही तो सबसे बड़ी कठिनाई है। ज्यों ही आपके मनमें यह बात आती है कि आप चित्तको एकाग्र करनेके लिये और उसके अन्यत्रगमनको रुद्ध करनेके लिये साधना कर रहे हैं, त्यों ही वह अन्यत्र भाग जायेगा। अन्य साधना-पद्धतियोंमें इसकी सम्भावना अधिक रहती है, क्योंकि वे रसहीन होती हैं। चित्त रसपिपासु है। जहां उसे रसोपलब्धि होगी, वहां वह जायगा। यह बताना आपका काम है कि कौन-सा रस वास्तवमें रस है और कौन-सा विषमिश्रित रस। वर्त्तमान साधनामें सौन्दर्यके कारण रसकी अव-स्थिति पर्याप्त है, अतः चित्तके अन्यत्र-गमनकी सम्भावना कम हो जाती है।

यह कोई आवश्यक नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति इस साधनामें सौन्दर्यका ही सहारा ले। अपनी-अपनी अभिरुचि और संस्कार है। हाँ, विषयका प्रियत्व अवश्य विचारणीय है। प्रियत्वके अभावमें रसका आगमन कठिन है और दो तीन दिनोंके बाद साधना-विच्युतिकी ही अधिक संभावना रहती है। जिन व्यक्तियोंकी रुपयोंमें अधिक प्रीति है, वे उन्हींपर ध्यानके केन्द्रीकरणका अभ्यास कर सकते हैं। जिन्हें अपने इष्ट देवताओंसे सच्ची प्रीति हो, वे उनकी मूर्तिपर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं।

मेरे कहनेका तात्पर्य यही है कि जिस विषयपर चित्तको एकाग्र करनेका अभ्यास किया जाय, वह सरस रहे, प्रिय रहे। दूरवर्त्ती विन्दु या नासिकाका अग्रभाग इसके योग्य नहीं है।

प्रतिदिन उषः कालीन प्रशान्त वातावरणमें और सायन्तन सुषमामें चित्त एकाग्र करनेसे स्मृतिका भी काफी विकास होगा।

लेकिन, यहां एक बात नहीं भूलनी चाहिये। बहुतसे व्यक्तियोंका चित्त स्वभावसे इतना चंचल रहता है कि वे जन्म भरकी साधनाके उपरान्त शायद चित्तकी उस एकाग्रताको प्राप्त कर सकें, जो कतिपय व्यक्तियोंमें स्वभावतः होती है। ऐसे व्यक्ति साधनाके द्वारा अत्यल्पकालमें उस स्थिति तक पहुंच सकते हैं, जिसे भारतीय योगी समाधिके नामसे अभिहित करते हैं। किन्तु इसीलिये चंचलचित्त व्यक्तियोंको यह नहीं समझ लेना चाहिये कि उनकी मानसिक शक्तियां उतनी कार्यकरी नहीं, जितनी एकाग्रचित्त व्यक्तियोंकी। चित्तकी एकाग्रता एक महत्वपूर्ण गुण है. इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु जीवन-पथमें केवल एक इसी मानसिक शक्तिसे तो सब कुछ नहीं होता है। अन्य शक्तियोंकी भी आवश्यकता है। और यह कोई आवश्यक नहीं है कि

चंचलचित्त व्यक्तियोंके वे अन्य मानसिक गुण भी एकाग्रचित्त व्यक्तियोंकी अपेक्षा कम हों। हो सकता है, वे उनकी अपेक्षा सहस्रगुणित शक्तिके साथ विद्यमान हों। किसी मनुष्यकी बौद्धिक शक्तियोंसे अभिज्ञ होनेके लिये केवल उसके चित्तकी शान्तिसे ही अभिज्ञ हो जाना सब कुछ नहीं है। मस्तिष्ककी अन्य महान् शक्तियाँ अशान्त चित्तमें भी पूर्ण बलके साथ विद्यमान रहती हैं। कहीं-कहीं तो शान्त चित्तकी अपेक्षा अधिक सशक्त और सतेज भी।

मैंने कई ऐसे तरुणोंको देखा है, जो सर्वथा चंचलचित्त हैं, लेकिन उनकी मानसिक क्रिया-शक्ति एकाग्रचित्त तरुणोंकी अपेक्षा कहीं अधिक है! वे उनकी अपेक्षा जल्दी किसी विषयको स्मरण कर सकते हैं,—अधिक शक्ति के साथ किसी समस्याको हल कर सकते हैं!

लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि चित्तकी चंचलता स्वयं एक गुण है। यह है तो अन्ततः एक दोष ही। मानसिक शक्तिके प्राचुर्यसे भी कभी-कभी यह दोष उत्पन्न हो जाता है! जिस व्यक्तिमें अन्य मानसिक शक्तियों का प्राधान्य हो और यह दोष भी हो, वह इसे पूर्णरूपसे तो दूर नहीं कर सकता, किन्तु अभ्यासके द्वारा यदि इसे कुछ कम कर दे तो उसकी शक्तियां पहले की अपेक्षा अधिक सुविधाके साथ कार्य कर सकती हैं।

हमें ध्यानशक्तिको बढ़ाना होगा! अपनेको इस योग्य बना लेना होगा, कि हम अविच्छिन्न रूपसे घंटों तक एक ही विषयपर विचार कर सकें। पारिपार्श्विक कोलाहल हमारे ध्यानको तनिक भी विचलित न कर सके!

यह कठिन है, लेकिन असम्भव नहीं है। अवधानकी इतनी शक्ति प्राप्त हो जाने के बाद हमारे मस्तिष्कमें दूरागत विचार-तरंगोंको पकड़ने की क्षमता अधिकाधिक विवर्धित होती चलेगी।

तब, अन्तमें हमें यही मानना पड़ता है कि स्मृति हमारी चिरन्तन सत्ताका स्वभाव है—गुण है और इस पार्थिव सत्ताकी एक विशिष्ट क्रिया।

पार्थिव सत्ताकी इस विशिष्ट क्रियाको, जिसे अवधारण कहा जाता है, अत्यधिक समुन्नत नहीं किया जा सकता। जिस व्यक्तिको जितनी अवधारण शक्ति प्राप्त है, उसे उतनी से ही सन्तोष करना पड़ेगा।

किन्तु अभ्यासादिकके द्वारा इस शक्तिको सुतीक्ष्ण एव कार्यकर किया जा सकता है। विभिन्न व्यक्तियोंमें विभिन्न ज्ञानेन्द्रियोंका अवधारण-क्षेत्र समुन्नत रहता है। किसीकी आँखोंका अवधारण-क्षेत्र अधिक शक्तिशाली होता है तो किसीके श्रवणोंका। बहुतसे व्यक्तियोंकी स्पर्शेन्द्रियका अवधारण-क्षेत्र शक्तिशाली होता है।

इस शक्तिको परिष्कृत करनेके प्रयास करनेके पहले यह जान लेना परमावश्यक है कि व्यक्तिको किस ज्ञानेन्द्रियका स्मृति-क्षेत्र अधिक बलवान है। उसे उसी ज्ञानेन्द्रियके स्मृति-क्षेत्रपर अधिक ध्यान देते हुए अपनी स्मरण-शक्तिको बढ़ानेकी चेष्टा करनी चाहिए।

बात कुछ विचित्र-सी मालूम होती है, लेकिन इसकी महत्ता खण्डनीय

नहीं ! हो सकता है, हम अपनी स्मृतिको ठीक पथमें समुन्नत करते-करते इस योग्य कर लें कि हमें जन्मान्तरोंकी बातें याद हो आयें !—हम अपने बिछुड़े हुए सहचरोंको पहचान लें !

आज तो हमारे सामने एक विचित्र कुज्झटिका छायी हुई है ! कुछ सूझता ही नहीं ! जन्मके पहलेकी बातें विस्मरणके तिमिरमें खो चुकी हैं ! कुछ भी याद नहीं, हम कहां थे,—क्या कर रहे थे और क्यों इस तमाकीर्ण मायालोकमें आ फँसे ।

काश ! हमें क्षण भरको भी वर्त्तमान जीवनके पहलेकी बातें याद आ जातीं तो हमारा कितना महान् उपकार होता और हम कितनी आसानीके साथ अपनी राह ढूंढनेमें लग जाते ! आज हमारे सामने राहका चुनाव करते समय जो विक्षोभ आ उपस्थित होता है, वह दूर हो जाता !

ऊपर नीला आकाश है,—चाँद, सूर्य और तारोंसे भरा ! नीचे यह दिगंतविस्तृत धरित्री है—तृण-तरु-लतागुल्म-नर-पशुसे समाकीर्ण ! और इसीके एक नन्हें-से कोनेमें बेचारा जीवनयात्री चला जा रहा है—सब कुछ भूल कर !

कितनी विवशता है ! शराबीको यदि अपने घरमें नशा आये तो कोई चिन्ताकी बात नहीं रहती,—वहां उसकी परिचर्या आसानीसे हो सकती है ! अपने घरमें यदि वह अभागा नशेकी हालतमें सब कुछ भूल जाता है तो उसका कुछ नहीं बिगड़ता, लेकिन यदि वह अपने घरसे ही नहीं, अपने गांवसे भी दूर किसी पराये देशमें जाकर सुध-बुध खोकर किसी खेतकी पगडण्डी पर बेहोश हो जाता है तो यह कितना करुणाजनक दृश्य है !

हमारे साथ और क्या हुआ है ! यह सौर मंडल तो हमारा चिरंतन वासस्थल कभी हो ही नहीं सकता,—क्योंकि यहांके कण-कणमें हमें

असह्य परायेपनकी अनुभुति होती है,—साथ ही हम इसके सम्बन्धमें जानते ही क्या हैं ! औरोंके घरके बारेमें कोई जाने चाहे न जाने, अपने घरको तो पहचानता ही है। इस सौरमण्डलमें हमारी जो विवश जीवनचर्या है, वह इस बातपर पर्याप्त प्रकाश डालती है कि हम यहां पराये हैं,—ठीक उसी तरह हैं, जिस तरह एक फ्रेंच तरुण कलाकार अपने को अफ्रीकाके किसी जङ्गली भागमें पा रहा हो,—तीर कमान लेकर वन्य पशुओंका शिकार खेलनेको समुत्सुक खड़े नरनारियोंसे वेष्टित।

यदि निकटतम तारा भी हमारा घर मान लिया जाय, तब भी हम कुछ कम दूरी पर नहीं हैं।

और अपने देशसे इतनी दूर आकर यदि हम पागलपनसे भरे हुए कृत्योंमें अपना समय बिताते हैं तो यह क्या हमारा ज्वलंत अविवेक नहीं है ! हमारा सर्वप्रधान कर्त्तव्य होशमें आना है—अपने खोये हुए ज्ञानको प्राप्त करना है।

जो लोग हमारी कार्य-प्रणाली पर हँसते हैं, वे हँसा करें ! मृत्युकी मुसकान उनकी हँसीको जिस दिन क्रन्दन रवमें परिवर्त्तित करेगी, उसी दिन उन्हें मालूम हो सकेगा कि कार्य-प्रणाली किनकी ठीक थी,—उनकी, जिनपर वे हँसा करते थे या उनकी स्वय !

जो हो, हमें महलों या झोपड़ोंसे कोई मतलब नहीं ! यदि समय बरबाद किये बिना ही हमें रहनेको महल मिल जायेंगे तो हमें इन्कार भी नहीं है, लेकिन हम महलोंमें रहनेके लिये अपना समय बरबाद नहीं कर सकते। मूल्यवान मोटरें और प्रासादोंका चाकचिक्य उन्हें मुबारक हो, जिन्हें यह अंधकारित ग्रह भा गया हो और जो सदैव यहीं रहना चाहते हों।

—o—

अनेकानेक प्रकारके बाह्य चाकचिक्यको देखकर अपने आपको उनके प्रलोभनोंसे अलग रखना भी साधारण बात नहीं है। ऊँची-ऊँची विद्योतित अट्टालिकाओंको,—नानाप्रकारके शृंगार-प्रसाधनोंसे मण्डित विश्राम-कक्षोंको, धनपतियोंके विनोद-भ्रमणार्थ निर्मित सौरभ-स्नात उद्यानोंको देखकर हमारा चित्त भी कभी-कभी डाँवाडोल होने लगता है; हम भी उनकी तरह जीवन यापन करनेका विचार करने लगते हैं।

ठीक है। अट्टालिकाओंका निवास और शृंगार-साधनों की उपस्थिति कोई बुरी चीज नहीं। किन्तु उनकी प्राप्तिके लिये रुपयोंकी आवश्यकता होती है। रुपये व्यापार प्रभृतिके बिना उपलब्ध नहीं होते और व्यापार प्रभृतिमें फँसनेसे फिर वही हालत होगी—आये थे हरि भजनको ओटन लगे कपास।

शारीरिक सुविधाओंका मैं विरोधी नहीं। किन्तु उनकी प्राप्तिके लिये जीवनके बहुमूल्य क्षणोंके नाशका मैं कदापि समर्थन नहीं कर सकता। जिन जीवनयात्रियोंके पास भाग्यवश अट्टालिकाएँ, मोटरें और इसी तरहके अन्य साधन पहलेसे ही विद्यमान हैं, वे उनका उपयोग करें,—लेकिन जिनके पास नहीं हैं, वे यदि उनकी प्राप्ति-कामना से उत्प्रेरित होकर अपनी राह छोड़कर दूसरी राह अपनाते हैं तो यह उनके लिये सर्वथा घातक सिद्ध होगा।

शरीरकी अवस्था ठीक रखनेके अतिरिक्त पार्थिव सम्पत्ति हमें और कुछ भी नहीं प्रदान कर सकती; लेकिन यह भी तभी हो सकता है, जब धनपति केवल धनपति ही न हो, कुछ-कुछ विद्यापति भी हो। अधिकांश लक्ष्मी-सम्पन्न व्यक्तियोंकी शारीरिक अवस्था जिस प्रकार की है, उसे देखते हुए तो निर्धनोंको ही सौभाग्यशाली मानना पड़ता है।

और हमें अधिकका करना ही क्या है! हमें न भोजनकी आवश्यकता है, न वस्त्र की, न गृहकी। हमारे इस पार्थिव आच्छादनको ही इन पार्थिव वस्तुओंकी आवश्यकता है और वह भी वहीं तक जब तक कि मरणका अन्धकार हमारे यात्रा-पथमें नहीं घिर आता है! इस जीवनकी समुपार्जित धनराशि मरणके उस पारकी किसी भी समस्याका समाधान नहीं कर सकती; अतएव भोजन प्रभृतिके लिये बहुत थोड़ा समय देते हुए हमें अपनी राहपर चलना पड़ेगा। हम जानते हैं, इस देशमें धनहीनों को अस्पृश्य समझा जाता है! जिसके पास लक्ष्मी है, वही गुणवान, वही बुद्धिमान और वही अशेष श्रीसम्पन्न समझा जाता है। हम यह भी जानते हैं कि हमें शान्ति पूर्वक अपनी राहपर लोग शायद ही चलने देंगे। कदम—कदम पर हमें उनका विरोध करते हुए आगे बढ़ना होगा। और हमें यह भी मालूम है और हमें अच्छी तरह मालूम है कि अपमानों और अवहेलनाओंके द्वारा हमें पथच्युत करने का कुछ कम प्रयास नहीं किया जायगा लेकिन इसके साथ ही साथ हमें यह भी मालूम है कि इस छोटी-सी अँधियारी राहको पार करनेके बाद वे हमीं होंगे, जिनकी ओर ये अपने उद्धारके लिये अश्रु-छलछल लोचनोंसे ताकेंगे।

हमारे इस पार्थिव आच्छादनका एक बहुत ही अच्छा गुण यह है कि हम इसे अपनी इच्छा-शक्तिके द्वारा जैसा चाहें वैसा बना सकते हैं। यदि हम

इसे परिश्रम करनेका अभ्यस्त बनायेंगे तो यह परिश्रममें ही सुख-बोध करेगा यदि हम इसे निद्रित रहने का अभ्यासी बनायेंगे तो इसे निद्रित रहनेमें ही सुखानुभूति होगी। यदि हम इसे विलासी बनायेंगे तो इसे विलास ही प्रिय लगेगा और यदि इसे दृढ़व्रती बनायेंगे तो उसीमें इसे सुख मिलेगा। साधारण दृष्टिसे देखने पर हमें मखमली बिछौनोंपर सोनेवाला एक कोट्याधीश कठोर परिश्रम करनेवाले एक श्रमजीवीकी अपेक्षा अधिक सुखानुभूति करता हुआ प्रतीत होता है किन्तु यह बात गलत है। सुख की अनुभूतिका आधिक्य प्रगतिपर आधारित है। नित्य कुटीरमें जीवनयापन करने वाले श्रमिकको यदि एक अच्छा-सा मकान मिल जाय तो उसे कुछ दिनोंतक सुखका अनुभव होगा, लेकिन कुछ समयके उपरान्त उसे वहां भी वैसा ही अनुभव होने लगेगा, जैसा कि कुटीरमें होता था। अब यदि उसे एक अच्छा-सा बँगला मिल जाय तो सुखकी अनुभूति होगी। वह मकान उसे सुख नहीं प्रदान कर सकता। बँगला भी थोड़े ही दिनों तक सुख प्रदान करनेमें समर्थ हो सकेगा। उसके बाद अट्टालिकाकी आवश्यकता होने लगेगी।

इस प्रकार सच्ची बात तो यह है कि सुख नामकी चीज इस ग्रहपर है ही नहीं। एक कदम और आगे,—एक कदम और आगे,—बस इसी तरह एक निर्मोह मरीचिका इस पथके पथिकोंको सदैव संत्रस्त करती रहती है।

शरीर स्वस्थ रहे और हमारे कार्यमें बाधक न बने,—बस हमें इसीका ध्यान रखना चाहिये। जबतक हम इस पार्थिव शरीरके साथ सम्बद्ध हैं तबतक इसकी अवहेलना करनेसे काम नहीं चलेगा। और न अपने शरीरको प्रकृतिको सौंपनेसे ही काम चल सकता है।

हमारे अस्तित्वके साथ प्राकृतिक आनुकूल्यका पक्ष-समर्थन करते हुए अनेकानेक विचारक कहते हैं कि यदि हम प्रकृतिके कार्योंमें बाधा न पहुँचायें तो हमारे रोग, शोक, परीताप अनेक अंशोंमें विदूरित हो सकते हैं,— हमारा जीवन सुख और सुषमाकी प्राभातिक कनक-किरणोंसे शृङ्गारित हो सकता है!

मैं भी इसे मानता हूं। प्राकृतिक नियमोंकी अवहेलना करनेसे हमलोगोंकी कुछ कम दुर्दशा नहीं होती है! हमारे शरीर और मस्तिष्कके अनेकानेक विकारोंके समुद्भवका कारण हमारे इसी आचरण-विपर्ययमें ढूंढ़ा जा सकता है। किन्तु मैं पूर्ण अंशोंमें इसे नहीं मानता। प्रकृति अत्यन्त दयालु है और उसपर निर्भर करनेसे हमारे शारीरिक एवं मानसिक क्लेश नष्ट हो जायँगे,— इस प्रकारके कथन सर्वथा भ्रामक हैं! साथ ही ये इस बातके भी द्योतक हैं कि इस प्रकारकी बातें कहने वाले व्यक्ति प्रकृतिकी वास्तविकताओंसे अनभिज्ञ हैं!

किसी सघन कान्तारमें जाइये और वहां देखिये प्रकृतिकी दयालुता! दांतों तले आपको उँगली दबा लेनी होगी! एक पशु दूसरे पशुको जब पकड़नेके लिये दौड़ेगा और उस भयाक्रान्त पशुके कारुणिक चीत्कारसे कानन-पथ आक्रंदित हो उठेगा, उस समय आप प्रकृतिकी दयालुताका समर्थन शायद ही कर सकें! वे वन-पशु सर्वथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं। उनमें कृत्रिमता कहां है! सभ्यता एवं संस्कृतिने उनके जीवनको पंगु कहां बनाया है! फिर उनके अस्तित्वको इस प्रकार संकटापन्न और क्रंदनमय क्यों रहना पड़ता है?

वे पशु यदि दूसरे पशुओं को हत्या न करें तो और करें क्या? प्रकृतिने उन्हें हिंसामय बनाया है! सिंह, व्याघ्रादिक काननवासी हिंस्र पशु यदि हिंसासे उपरत हो जायँ तो उनके लिये जीवन-धारण करना ही असम्भव हो जाय!

जो लोग पशुओंके जीवनको, विशेष करके विपिनिवासी पशुओंके

जीवनको मानवोंके जीवनसे अधिक सुखमय समझते हैं, वे कुछ गलती करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्योंके मस्तिष्ककी शिराओंको जो निदारुण चिन्ताएँ सदैव झकझोरती रहती हैं, उनसे वे प्राणी सर्वथा अस्पृष्ट रहते हैं, किन्तु केवल चिन्ता-राहित्य ही तो सुखानुभूतिका समुद्भावक नहीं हो सकता! क्षुधा-निवारण और योनिलिप्साकी परितृप्तिकी उद्दाम कामना समस्त प्राणियोंको कार्य-साधनाके लिये उत्प्रेरित करती रहती है! मानवोंकी उस कार्य-साधनाके पीछे स्नेह, कल्पना, विचार, तर्क, स्मृति प्रभृतिका भी प्राबल्य है, किन्तु अन्य प्राणियोंमें इनकी न्यूनता ही रहती है!

सच्ची बात तो यह है कि इस ग्रहपर संघर्ष, हिंसा और भय प्रभृतिके ही संश्लेषणका दूसरा नाम जीवन है! यहाँका प्रत्येक प्राणी अपने अस्तित्वके लिये संघर्ष करता है और अपने अस्तित्वके सबल शत्रुओंसे भयभीत भी रहता है। चाहे वह प्राणी सुसभ्य और सुशिक्षित नागरिक हो या अफ्रीकाके वनान्त-पथका कोई हिंस्र पशु ही क्यों न हो!

इस ग्रहके इस हाहाकारभरे दृश्यको देखते हुए भी यदि हमें प्राकृतिक करुणा पर अवलम्बित होनेकी सलाह दी जाती है तो हमें उसकी अवहेलना ही करनी चाहिये।

हमें शारीरिक सुरक्षाके लिये विज्ञानकी ओर देखना पड़ेगा और आत्मिक सुरक्षाके लिये दर्शन और कविताकी ओर।

शारीरिक अस्वास्थ्य हमारे यात्रा-पथमें असाधारण बाधा पहुंचायेगा, इसको हमें कदापि न भूलना चाहिये।

और साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिये कि यह देश केवल पराया ही नहीं, हाहाकारभरा भी है।

सचमुच, यह कौन-सा देश है, जहां हमारा अस्तित्व एक भीषण अज्ञान और व्यामोहके तिमिरसे आक्रान्त हो गया है!

ये दिन, ये रात्रियां,—ये सन्ध्याएं और ये प्रभात, ये मनुष्य और ये पशु, पक्षी!.. यह सब क्या है?

नगर हैं, सड़कें हैं, मकान है। गांव हैं, गलियां हैं, फूसके झोंपड़े हैं। देश हैं, समाज हैं, राष्ट्र हैं, जातियां हैं। मन्दिर हैं, मस्जिदें हैं, गिर्जाघर हैं! कहीं भीषण कानन हैं तो कहीं उन्नत गिरि-श्रेणियां!

अभी प्रभात हुआ ही है!

प्राची-गगनको चीरती हुई नूतन किरणें प्रवेश कर रही हैं। कोई हत-भाग्य प्रणयी अपने अरमानोंके खूनसे प्राचीको लीपता हुआ-सा प्रतीत होरहा है।

चारों ओर एक विचित्र और असुन्दर कोलाहल प्रसूत हो चला है। रात भर सो कर या जागकर,—सारी रात निश्चिन्ततापूर्वक बिताकर या चिन्ता

की ज्वालामें झुलस-मुलस कर,—एकाकी विप्रयोग-व्यथित हो करवटें बदलते हुए रातें काली करके या आलिङ्गन प्रभृतिके द्वारा अपनी शारीरिक वासनाओंको परितृप्ति करके नानाविध मानव अपने-अपने नीड़ों से,—उन नीड़ोंसे, जिन्हें वे महल, मकान, झोंपड़ी, दौलतखाना, गरीबखाना या इसी तरह और कुछ कहा करते हैं, निकल रहे हैं !—दाना चुगनेके लिये ! कुछ दूकानोंकी ओर जा रहे हैं, कुछ किसी दूसरी ओर जा रहे हैं। ज्यों-ज्यों धूप बढ़ती जाती है और प्राची-गगनमें बिखरा हुआ खून जमकर नीला होता जा रहा है, त्यों-त्यों सड़कोंका कोलाहल बढ़ता चला जा रहा है। चारों ओर नरक-निर्वासिता अशान्ति छाने लगी है। रात्रिकालीन नीरवता मृत्युके हाथोंसे विषकी न जाने कौन-सी प्याली पीकर नष्ट हो जाती है।

अब दिन भर तरह-तरहकी चिन्ताएँ वातावरणमें मँड़राती रहेंगी,—प्रत्येक व्यक्ति एक कलुषित संघर्षको अपनाये रहेगा। रात्रि जब अपनी तिमिर-छायाको पूर्णरूपसे प्रगाढ़ कर लेगी, तब तक चारों ओर यही व्यर्थका खरख सुनायी देता रहेगा।

मैं पूछता हूं, इस विचित्र संघर्षका अर्थ क्या है ? किस उद्देश्यकी प्राप्ति की ज्वलन्त कामनासे इस ग्रहके समस्त देशोंके मानव-समूह इतनी दौड़धूप दिन भर किया करते हैं ? मुझे तो इसका कोई भी अर्थ नहीं दिखलायी देता। एक विवेकहीन उन्मादकी वशवर्त्तिनी हो कर मानव-जाति अपने जीवनके दिवसोंको अतीतके अन्धकारकी ओर फेंकती चली जा रही है।

जीवनमें सफलताके जो स्वप्न मानवोंके द्वारा देखे जाते हैं, वे अतिशय विचित्र और उन्मादपूर्ण हैं। कोई व्यक्ति जीवनके अनगिनती दिवसोंको कुत्सित संघर्षके शोणितसे रञ्जित करनेके बाद और कितनी ही श्यामा निशाओं

को अशान्तिके दावानलसे झुलसानेके बाद यदि कुछ स्वर्ण-मुद्राएं एकत्रित कर लेता है, या अपने घोंसलेको कुछ वृहद् रूप प्रदान करनेमें समर्थ हो जाता है तो लोग कहते हैं, उसे जीवनमें सफलता मिल गयी,—उसने अपना जीवन बना लिया। भले ही उसके प्रत्येक दिन और उसकी प्रत्येक निशाएँ एक साधारण व्यक्तिके जीवनके समान ही उसे सुख दुःख प्रदान करती हों!

....और एक दिन अचानक मृत्यु अपने तम-श्यामल अंचलको फहराती हुई आती है एवं एक ही फूंकसे उसके जीवन-दीपकका निर्वाण करके उसके जीवनकी सफलताका वास्तविक स्वरूप बतला देती है। लोग उसका उस मृत देहको, जिसे सुख पहुंचानेके मूर्खतापूर्ण प्रयासोंमें उसने न जाने कितने व्यक्तियोंको श्रम-पीड़ित किया होगा, उठाकर श्मशानकी चिता-ज्वालामें निवेदित कर देते हैं।

मृत्युके उपरान्त क्या होगा!—हमें कहां जाना है!—आकाश-पथमें आलोक बिखेरनेवाले ये तारककुमार क्या हैं, इस सम्बन्धमें विचार करनेवाले मनीषियोंको तो मानव-जाति पागल समझती है,—उनके जीवन-कालमें उनकी अवहेलना करती है,—उनका उपहास करके उन्हें पथच्युत करनेका प्रयास करती है और एक मूर्खतापूर्ण जीवन-प्रणालीको अपनाकर जो लोग उसका गला घोंटते हैं,—उसके अस्तित्वको संकटापन्न करते हैं, उनके सामने वह सिर झुकाती है,—उन्हें महान् समझती है और उनके जीवनको सफल बतलाती है!

इस ग्रहपर अवतरित कलाकारों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकोंके साधना-पथ में जो-जो बाधाएँ पहुंचायी गयी हैं, उनका उल्लेख यहां निरर्थक-सा होगा! अपने समुद्भवकालसे लेकर विनाश-मुहूर्त्त तक निरर्थक क्रिया-कलापमें व्यस्त

रहनेवाले व्यक्तियोंके जीवनका सफल समझा जाना और अज्ञानके इस महा-भयङ्कर निशीथ-तिमिरमें रवि-किरणोंका आह्वान करने वाले मनीषियोंके जीवन को असफल समझा जाना मानव-जातिके बौद्धिक महत्वपर पर्याप्त प्रकाश निक्षिप्त करता है !

मैं यह नहीं कहता कि मानव-जातिने कलाकारों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकोंको सत्कृत नहीं किया है। उसने इनका आदर किया है और नानाविध प्रणालियोंसे इनकी अभ्यर्थना भी की है, किन्तु यह आदर और अभ्यर्थना उन बाधाओंके सामने सर्वथा नगण्य हो जाती हैं, जो उसने इन महामहिम व्यक्तियोंके विकास-पथमें पहुंचायी हैं।

अपने पूर्वजोंके द्वारा अर्जित की गयी सम्पत्तिके बलपर विदेश-यात्रा करके क्षुद्रत्व की भावना से आक्रान्त भारतवासियोंमें अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बनाकर एवं दो चार बार कारावासी बनकर ख्यातनामा नेता बन बैठनेवालोंको तो फरिश्ता समझा जाता है,—तरह-तरहसे उनकी पूजा की जाती है और अज्ञानके इस महाभयंकर निशीथमें ज्ञानके मन्दिरमें साधनाका दीपक जलाकर जीवन-यापन करनेवाले महामनीषियोंके जीवनको निरर्थक समझा जाता है,—उन महामनीषियोंके जीवनको, जिनके अभावमें आज इस संसार का अज्ञान-तिमिर क्या जाने कितना गहरा हुआ होता !

जीवनके उस पार क्या है, इसे मानवजाति नहीं जानती है, यह उसकी अज्ञता एवं बौद्धिक अशक्तिका परिचायक है, लेकिन वह इसे जाननेको स्वयं भी चेष्टा नहीं करती और अन्य व्यक्तियोंको भी चेष्टा नहीं करने देती, यह उसकी उन्मादग्रस्त असभ्यताका परिचायक है ! आरम्भिक मानव-समूहोंने अपनी दुर्बल कल्पनाओंके आधारपर मृत्युके उसपारकी जो तसबीरें विभिन्न देशोंके

विभिन्न धर्मशास्त्रोंमें आंकी हैं, उनको लेकर जो रक्तपात हुए हैं, वे मानव-जातिके अस्तित्वकी विचित्रतापर ही प्रकाश डालते हैं।

मृत्यु क्या है और उसके बाद क्या है, जब तक इसका निश्चयात्मक ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक मानव-जातिके समस्त कर्मोद्यम निरर्थक हैं।— चाहे वे कर्मोद्यम राजनीतिका उज्वल चाकचिक्यमय परिधान पहनकर नेत्रोंको आकर्षित करें, चाहे अर्थनीतिका परिधान धारण कर। जब तक पथिक अपनी मंजिलको नहीं जान लेता, तब तक उसका राहपर चलना निरर्थक नहीं है तो क्या है।—एक मूर्खतापूर्ण उन्मादके अतिरिक्त उसे और क्या कहा जा सकता है।

—०—

इस ग्रहके सर्वोत्कृष्ट निवासियोंका इतिहास रुचिकर भले ही हो, किन्तु वह उज्वल नहीं। मूर्खतापूर्ण रक्तपातोंके अतिरिक्त और रोटीका सवाल हल करनेके अतिरिक्त और बहुत कम बातें ऐसी मिलेंगी, जिन्हें महत्व दिया जा सके।

सर्वाधिक आश्चर्यकी तो बात यह है कि जिन लोगोंने जितने अधिक नगरोंके वातावरणमें हाहाकार मिश्रित किया, उन्हें इतिहासप्रेमियोंके द्वारा उतना अधिक सम्मान प्राप्त होता आया है। ऐसे कोई व्यक्ति किसीको हत्या कर डालता है तो उसे शासक मानव-समूह प्राण-दण्ड देता है,—समाज उसकी भर्त्सना करता है,—कदम-कदमपर उसे अवमानित किया जाता है, किन्तु जिन लोगोंने लाखों मनुष्योंको हत्या की या कर रहे हैं, उन्हें महापुरुष समझा जाता है,—स्थान-स्थानपर उनकी निधन-तिथियाँ बड़े समारोहसे मनायी जाती हैं! ऐसे यदि कोई व्यक्ति किसीके गृहमें प्रवेश करके बलपूर्वक उसकी

सम्पत्तिका अपहरण करता है, तो उसे पापी, कमीना और न जाने क्या-क्या कहा जाता है,—उसे घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता है, लेकिन जब एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्रपर आक्रमण करके उसकी सम्पत्तिसे अपना सुखैश्वर्य विवर्धित करता है तो उसे न्याय्य समझा जाता है,—उसके विरोधमें उँगली तक नहीं उठायी जाती !

सौभाग्यवश विज्ञानके प्रगतिजन्य आलोकने मानवी चिन्ताधाराको इधर कुछ स्वस्थ रूप प्रदान किया है और लोग दृष्टिकोणके इस वैचित्र्यको कहीं-कहीं समझने भी लगे हैं ।

मानवी सभ्यताके अतीतके सम्बन्धमें एवं उसकी प्रगतिके सम्बन्धमें नानाविध विचारधाराएं समुद्भावित हुई हैं । वर्त्तमान युगके अधिकांश विचारक वर्त्तमान युगकी सभ्यताको ही अब तक की साभ्यतिक प्रगतिका चरमोज्वल स्वरूप समझते हैं । विकासवादका सिद्धान्त इस दिशामें मुझे अग्राह्य नहीं । वर्त्तमान मानवी-सभ्यता विगत शताब्दियोंकी अपेक्षा अधिक उज्वल है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु सहस्राब्दियों पूर्व की वे प्रनष्ट सभ्यताएं भी कुछ कम महत्व नहीं रखतीं । प्राचीन भारतवर्ष और मिश्र एवं यूनानके कतिपय व्यक्तियोंके द्वारा अर्जित किया हुआ ज्ञान आजके सुमहान् विचारकोंके लिये स्पृहाका विषय बन सकता है !

जो हो, सभ्यताको यहां उसी अर्थमें देखना है, जिस अर्थमें मानव-समुदाय उसे देखता है ! विद्वानोंने इस शब्दके नानाविध अर्थ किये हैं, लेकिन उन अर्थोंमें और इस शब्दके प्रचलित अर्थमें महान् अन्तर विद्यमान है । विद्वानोंके द्वारा किये गये अर्थ मानवी बौद्धिक समुन्नतिके अर्थमें पर्यवसित होते हैं और साधारण जनसमूहके द्वारा किया गया अर्थ भ्रमपूर्ण मानवी सुख-साधनोंके एकत्रीकरणके अर्थ में ।

और इन भ्रमपूर्ण मानवी सुख-साधनोंका एकत्रीकरण रुपयोंके एकत्रीकरणका सहचर है, अतएव वर्त्तमान साम्यतिक जगत्में उन व्यक्तियोंको ही अधिक सुविधाएँ प्राप्त हैं, जिन्होंने विभिन्न प्रणालियोंसे रुपयोंका उपार्जन कर लिया है !

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वैज्ञानिकोंके अनवरत प्रयाससे मानव-जातिने जो साधन उपलब्ध किये हैं, वे उसके बधुर जीवन-पथके भयावह अन्धकारमें एक दो किरणें फेंक सकते थे !—ट्रेनें, हवाई जहाज, रेडियो, छापनेकी मशीनें प्रभृतिसे मानव-जातिका उपकार-साधन हो सकता था, लेकिन जिस प्रकार विषकी एक बूंद मनों दूधको अपेय कर सकती है,—क्षण भरका कटु व्यवहार जिस प्रकार वर्षों पुरानी अनवद्य मैत्रीको छिन्न-भिन्न कर सकता है, उसी प्रकार मानव-जातिके द्वारा आविष्कृत मुद्रा-प्रथाने इस समस्त साधनोंकी महत्तापर पानी फेर दिया है !

इन साधनोंसे जिनको लाभ उठाना चाहिये, वे तो इनसे वञ्चित हैं और मूर्खों और प्रपञ्चप्रवीणों,—साम्यतिक समुन्नतिके विघातकोंके वेश्मोंमें ये साधन अपने अस्तित्वकी विपुल व्यर्थता पर आहें भरा करते हैं !

रेडियोको ही लीजिये। विद्वानोंके गृहोंमें आप जा-जाकर देखिये। आपको कहीं-कहीं ही रेडियो दिखलायी देगा। लेकिन उन व्यक्तियोंके गृहोंमें वह अवश्य मिलेगा, जिनका सारा जीवन केवल किसी न किसी तरहसे मुद्रार्जनमें बीता है। ट्रेनोंके द्वारा दूर देशोंकी यात्रा करके जो विद्वान मानवो साम्यतिक प्रगतिमें सहायक हो सकते थे,—अनेक रहस्यावरणोंमें छिपी हुई बातोंको प्रकाशमें ला सकते थे, वे तो रुपयोंके अभावके कारण अपने अशेष स्नेहके पात्रोंके पास भी नहीं जा सकते और जिन दो पैरवाले जानवरोंके

द्वारा मानव-जातिका कोई भी हित-साधन नहीं हो रहा, जिनके जीवनका सर्वोच्च आनन्द ही स्त्री-संसर्ग और सन्तानोत्पादन है, वे रुपयोंके बलपर दुनियाँ भरकी सैर करते हैं। कभी ईजिप्त जाते हैं तो कभी यूनान। कभी फ्रांसके किसी सांध्य समीरान्दोलित अंगूरी खेतमें दिखलायी देते हैं तो कभी स्विटजरलैण्डकी सुरम्य पर्वत-श्रेणियोंके बीच। वे ईजिप्त जाकर वहाँके सुसज्जित होटलोंमें ठहरनेके अतिरिक्त और वहाँकी तरुणियोंके साथ विनोद-वार्त्ता करनेके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकते। ईजिप्तके उन पिरामिडोंमें क्या छिपा हुआ है,—वे अपनी मौन भाषामें चन्द्र-ज्योत्स्नाधौत रात्रियोंमें क्या कहा करते हैं, इसे वे क्या खाक समझें? वहाँ वातावरण सम्बन्धी और भोजन-सम्बन्धी बातोंके सिवा न अन्य किसी विषय पर वे बातें ही कर सकते हैं! और जब वे अपना यात्रा-काल समाप्त करके घर लौटते हैं तो अपने मित्रोंसे या तो किसी देशकी तरुणियोंकी शारीरिक मसृणता एवं कामोद्दीपनाकी प्रशंसा करेंगे, या कहींके होटलोंकी स्वच्छताकी और वहाँके कर्मचारियोंकी व्यवहार-कुशलताकी या वहाँ होनेवाले कष्टोंकी। यूनान घूमने जायँगे, लेकिन वहाँसे लौटकर आनेपर न तो वहाँके प्रत्येक रजकणमें छिपी हुई किसी करुण कहानीका ही कोई शब्द वे अपने साथ ला सकते हैं और न और ही कुछ। शारीरिक सुखके या क्लेशके अनुभवोंके अतिरिक्त वे और कुछ भी अपने साथ नहीं ला सकते! लेकिन जो कवि यूनान और मिश्र जाकर वहाँकी अतीतकालीन गाथायें वहाँ बहते हुए निशीथ-समीरणके द्वारा सुन सकता था,—जो वहाँके पिरामिडों और पाषाणखण्डोंमें अतीतके आँसुओंको देखकर क्या जाने कितनी सुषमासे संयुक्त गीतोंकी सृष्टि कर सकता था, वह रुपयोंके अभावसे कुछ नहीं कर पाता,—कहीं भी नहीं

जा पाता ! दुनियाके एक कोनेमें पड़ा हुआ वह संध्याकी तिमिरालस घड़ियोंमें अपनी प्रतिभाका क्रन्दन सुन-सुनकर घुटता रहता है !—जीवनके क्षणोंको अभिशाप-भारसे आनत देखकर विकल होता रहता है !.......

इसी प्रकार विज्ञानप्रदत्त अन्य साधनोंसे वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थामें पूँजीपति नामके ये विचित्र प्राणी ही अपने पार्थिव अस्तित्वको सुहला रहे हैं !—अन्य व्यक्ति उन्हें देख भर पाते हैं !

सौभाग्यवश इस ग्रहके एक देशने कार्यरूपमें पूंजीप्रथाका बहिष्कार करके समाजवादकी स्थापना भी की तो अब पूंजीवादी और साम्राज्यवादी बाघ भालू उसके अस्तित्वको संकटापन्न कर रहे हैं। देखें, मानव-जातिके भाग्यमें क्या बदा है !—समाजवादकी प्राभातिक किरणोंसे धौत व्यवस्था या मदांध साम्राज्यवाद या पूंजीवादका यही कुत्सित स्मशान—नृत्य !

—०—

जैसे लक्षण दिखलायी दे रहे हैं, उनसे तो यही प्रकट होता है कि मानव-जातिका जीवन सदैव इसी तरह उन्मादपूर्ण रहेगा!—उसे अपने विनाश-मुहूर्त्त तक निविड़ अन्धकारकी छलनाओंसे आक्रान्त होकर इसी प्रकार सतत क्रन्दनलीन रहना पड़ेगा! चन्द्र-ज्योत्स्ना-धौत पथ उसके लिये नहीं बना है! युगयुगान्त तक वह इसी प्रकार पथ-कण्टकोंके चुभनेकी पीड़ासे कराहती रहेगी। पुष्प-संकुल वीथिकामें उसे ले जानेकी सामर्थ्य किसीके प्राणोंमें नहीं है। इस ग्रहके जीवनानुपयुक्त हो जाने तक वह इसी प्रकार व्यर्थके संघर्षोंमें जूझती रहेगी!—उसके अन्तर्तमसे निकला हुआ अर्थहीन हाहाकार इसी प्रकार पृथ्वीके वातावरणमें गुञ्जित होता रहेगा। सुख-श्री-सौरभसे उसका जीवन-पथ शायद ही स्नात हो सके! राशि-राशि उल्लास-धारा शायद ही उसके जीवनका शृंगार कर सके! जो भ्रान्तियां मानव-जातिके उद्भव-कालमें थीं, वही कुछ परिष्कृत रूपमें उसके विनाश-कालमें भी रहेंगी।

जिस प्रकारके लक्षण दिखलायी दे रहे हैं, उनपर विचार करते हुए तो ऐसे ही निष्कर्ष,—निराशाके भीषण अन्धकारसे ढँके हुए निष्कर्ष निकालने पड़ते हैं। ऐसा मालूम होता है कि इस प्रकारके प्राणियोंके लिये परिष्करणके अतिरिक्त और किसी प्रकारकी भी उन्नति असम्भव है,—और उन्नतिका स्वप्न देखना एक विडम्बना मात्र है !

मानव-जातिके भविष्यके सम्बन्धमें इतनी निराशाका पोषण करना अनेकानेक विचारकोंको सर्वथा अनुपयुक्त-सा प्रतीत होता है, क्योंकि वे सोचते हैं कि जिस प्रकार वह उन्नति करती आ रही है, उसी प्रकार भविष्यमें भी उन्नति करती रहेगी और एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब वह सत्य और सौंदर्यके आलोकमें जीवन-पथपर चलनेके योग्य हो जायेगी। उस समय इन कुत्सित संघर्षोंका चिह्न भी नहीं रह जायगा। वैज्ञानिक उन्नति मानव-जातिको अनेकानेक क्लेशोंसे विमुक्त कर देगी !......लेकिन गंभीरतापूर्वक वस्तुस्थिति पर विचार करनेसे इस उदात्त आशाका सुकोमल मृणाल स्वयमेव नैराश्यकी सुतप्त सिकता-राशिसे झुलसने लगता है !

मैं पूछता हूं—'मानव-जातिने क्या उन्नति की है ? आजसे हजारों वर्ष पहलेके मानवोंमें और आजके मानवोंमें क्या अन्तर आ पाया है ? मानवों की तो बात जाने दीजिये। पशुओंमें, पक्षियोंमें और सभ्यताभिमानी मनुष्योंमें ही कौन-सा अन्तर है ? इन तीनोंका एकमात्र उद्देश्य है जीवित रहना और सन्तानोत्पादन करना। अपनी-अपनी सुविधाके अनुसार सब जीवनके परिवेष तैयार करते गये हैं, इसके अतिरिक्त और कोई भी महत्वपूर्ण बात नहीं है। मानव-जातिके चीत्कार भरे इतिवृत्तमें जो कुछ महत्वपूर्ण बातें हुई हैं, वे कलाकारों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकोंके द्वारा हुई हैं, लेकिन ये अपवाद

हैं। मानव-जाति भी इन्हें अपवाद मानती है, तभी तो इनके पथमें वह निरन्तर नव-नव कण्टकोंकी वर्षा करती रहती है। जब कोई वैज्ञानिक सृष्टिके छिपे हुए करोड़ों रहस्योंमें से किसी एक रहस्यके उद्घाटनका प्रयास करता है, तो उसे आर्थिक सहायता देनेको दुनियांका कोई भी राष्ट्र समुद्यत नहीं होता, लेकिन जब वह युद्ध-शक्तिको बढ़ानेके लिये कुछ घातक आविष्करणोंमें प्रवृत्त होता है, तो दुनियांके समस्त राष्ट्र उसको आर्थिक सहायता देनेको तैयार हो जाते हैं। उदाहरणोंकी कमी नहीं। वर्त्तमान युगमें इसके सैकड़ों उदाहरण मिल जायंगे। इन बातोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव-जातिको संसारके रहस्योंके ज्ञानकी कोई आवश्यकता नहीं है,—वह सत्यको नहीं जानना चाहती है। वह केवल यही चाहती है कि जिस प्रकारसे भी हो, निर्बल प्राणियोंपर अधिकारकी स्थापना करके वह अपने जीवित रहने और सन्तानोत्पादन करनेके ध्येयको पूर्ण करे।

संसारके सभी भागोंके मानवोंमें इसी प्रवृत्तिकी प्रधानता मिलेगी। अज्ञानके इस सुनिविड़ अन्धकारको विदीर्ण करके ज्ञानकी आलोक-रश्मियोंका आवाहन करनेवाले व्यक्ति भी इस ग्रहमें यत्र-तत्र दृष्टिगत होंगे, किन्तु अपवाद ही तो नियमकी सार्थकता निष्पन्न करता है।

मानव-जाति अपने समुद्भव-कालसे लेकर अबतक जिस प्रकारके क्रिया-कलापमें व्यस्त रहती आयी है, वे उसके भविष्यकी उज्वलतापर प्रकाश न डालकर उसकी कालिमाका ही स्पष्टीकरण करते हैं।

मानव-जातिके जीवन-क्रमको समुन्नत रूप प्रदान करनेके लिये कार्ल-मार्क्सने जिस दिशाका निर्देश किया था,वही इस कालिमामें कनक-किरणके समान ज्योति विकीर्ण करती हुई सी दृष्टिगत होती है। इस ग्रहके अधिवासियोंकी

जीवनचर्याको सुस्थ रूप प्रदान करनेके लिये जीसस क्राइस्ट, महात्मा बुद्ध, मुहम्मद प्रभृति व्यक्तियोंके द्वारा जो प्रयास हुए थे, वे थे तो विभिन्न दृष्टिकोणोंसे विभिन्न सुन्दरताओं एवं उपयोगिताओंसे सम्बलित, किन्तु ये सुधारक मानव-जातिके अस्तित्वकी सघन तिमिर-मायासे अभिज्ञ नहीं हो सके थे।

मानव-जातिने,—इस अन्धकारित ग्रहके सर्वोत्कृष्ट प्राणिवर्गने अपने रहने की जो व्यवस्था की है, वह सर्वथा उन्मादपूर्ण है, इस सम्बन्धमें अधिक प्रकाश डालनेकी आवश्यकता नहीं। 'इन्कलाब जिन्दाबाद' में मैंने मानव-जातिकी वर्त्तमान घृणित सामाजिक व्यवस्थाकी अर्थहीनता पर पर्याप्त प्रकाश निक्षिप्त किया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस ग्रहको ज्ञानके आलोकसे परे एक विचित्र और मायामय वातावरणमें रखा गया है, लेकिन इसके अधिवासी चाहते तो कमसे कम अपने अस्तित्वके आरम्भिक प्रश्नोंको तो हल कर सकते थे। रोटी वस्त्र प्रभृतिकी जो प्राथमिक समस्याएं हैं, उनका समाधान भी इस ग्रहका सर्वोत्कृष्ट प्राणिवर्ग इन सहस्रों वर्षोंके सुदीर्घकालमें नहीं कर पाया तो उससे और क्या आशाकी जा सकती है!

कारागारके बन्दी जब तक कारामें रहेंगे तब तक स्वतन्त्र-विचरणका सुख तो उन्हें नहीं मिल सकता, किन्तु वे कारागारमें अपने रहनेकी ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं, जिससे उन्हें कमसे कम कष्ट हों। यदि वे वहाँ आपसमें लड़ें, झगड़ें और एक दूसरेकी रोटियां छीनते फिरें तो कौन इन कैदियोंको भला कहेगा!

क्या इस निर्वास-गृहमें वही नहीं हो रहा है?

भोजन प्रभृतिकी सामग्रियोंका यहां अभाव होता तब तो कोई बात भी

थी। लेकिन यहां तो एक निरर्थक स्वार्थ-जनित उन्मादना और अविवेकिता नाच नचा रही है। कतिपय वर्षोंके इस नन्हे से आवास-स्थलको नाना राष्ट्रों और नाना समाजोंमें विभक्त करके व्यर्थके संघर्षोंसे अपने अस्तित्वको आक्रान्त करके मानव-जाति फूली नहीं समा रही है!

ऐसे विचित्र रौरव-लोकके भविष्यके सम्बन्धमें ऊंची कल्पनाएं कैसे की जायँ!—कैसे कहा जाय कि मानव-जातिका भविष्य अतिशय उज्वल है!

मानव-जातिका साराका सारा अतीतकालीन क्रिया-कलाप इसी प्रकारकी विचित्र उन्मादनाओंसे निपूरित है। कलाकारों, दर्शनिकों और वैज्ञानिकोंको यदि निकाल दिया जाय तो मानवी इतिवृत्तमें एक भी बात ऐसी नहीं मिलेगी, जिसपर शर्मके मारे आंखें न झुका लेनी पड़ें!

लाखों वर्षोंतक अपनी झोलीमें नानाविध अनुभवोंको भरते रहनेके बाद आज मानव-जाति कैसे विचित्र स्थानपर पहुंची है, यह तो प्रत्यक्ष ही है। वर्त्तमान युगको यदि एक भीषण उन्मादसे आक्रान्त कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। न तो मानव-जाति उन्नतिकी ओर जा रही है, न अवनतिकी ओर! वह सहस्राब्दियोंसे एक ही स्थानपर पैर पटक रही है! जो समस्याएं उसके सामने सहस्राब्दियों पूर्व थीं, वही अब भी हैं। जो मार्ग उसके सामने पहले थे, वही अब भी हैं। पहले वाली ही कठिनाइयां है,—पहले वाले ही प्रश्न हैं,—वही दुविधाएं हैं, वही आशङ्काएं!

आजसे कई लाख वर्ष पहलेके मानवोंके सामने उदर-पूर्त्तिका प्रश्न जिस विकराल रूपमें था, उसी विकराल रूपमें वह आज भी है। आज भी उसे उसी प्रकार क्षुधा-निवारणके लिये चिन्तित और श्रम-जर्जर रहना पड़ता है। अपने शारीरिक अस्तित्वकी सुरक्षाके लिये आजसे लाखों वर्ष पहले वह

जितना प्रयत्नशील रहता था, उतना ही प्रयत्नशील उसे आज भी रहना पड़ता है। पहले भी उसे इस बात का भय बना रहता था कि कहीं उसके अन्य साथी उसको हत्या न कर डालें, आज भी उसे इस प्रकारका भय पीड़ित करता रहता है।

ज्ञानकी भी वही अवस्था है।

उस दिन एच-जी वेल्स की एक किताब पढ़ रहा था। उसमें उन्होंने एक स्थानपर लिखा है—What is Man thinking now ? (कल्पना कीजिये कि यह प्रश्न इस सौरमण्डलसे बाहरकी किसी सुमहान् शक्तिके द्वारा किया गया है।)

The answer would have to be "He is in a fever. He is delirious. He had muttered all sorts of things in the past but now he is waking up very painfully and he talks louder."

"To what Purpose ?"

"None. He just says onething after another and does not pause even to consider what he himself has said."

मानव-समूह उन्नतिके गिरि-शिखरकी ओर जा रहा है या अवनतिके तमाकीर्ण गर्त्तकी ओर, इस प्रश्नपर वर्त्तमान युगके अनेकानेक विचारकोंने अपने विचारोंकी अभिव्यक्ति की है। किन्तु इस प्रश्नपर विचार करना ही निरर्थक है। मानवी दुरवस्था स्पष्ट है।

इतनी कुत्सित और हेय सामाजिक व्यवस्थाके रहते हुए भी विज्ञान और कलाकी जो थोड़ी बहुत उन्नति हो रही है, उसके भी विरोधी इस दुनियाँमें भरे पड़े हैं। कला और विज्ञानका अस्तित्व उनके लिये सर्वथा अर्थहीन है।

कुछ ही दिन पहले की बात है। एक सज्जनसे बातें होने लगीं। प्रसंगवश उन्होंने कहा—"आजकल आप क्या कर रहे हैं?"

मैंने उत्तर दिया—"अणुओं, परमाणुओंके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंने अबतक जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसका अध्ययन कर रहा हूं।"

इसपर उन्होंने कुछ उपेक्षा-सी प्रदर्शित करते हुए कहा—"आप अपना समय व्यर्थ बरबाद कर रहे हैं। आप रुपये कमानेमें अपनी बौद्धिक शक्तियाँ लगायें तो अत्यल्प कालमें लखपती बन जाइयेगा।"

मैं उनकी बात सुनकर हँस पड़ा! मैंने कोई उत्तर नहीं दिया!

यहाँ मुझे एक बात और याद हो आयी। फैराडेकी वैज्ञानिक साधनापर और उसकी साधनासे मानवी अस्तित्वके पथपर जो स्वर्णिम किरणें बिखर पड़ी हैं, उसपर प्रकाश डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं। वर्त्तमान वैज्ञानिक जगत् बहुत कुछ अंशोंमें उस मनीषीका—उस दृढ़व्रती साधकका अनुगृहीत है। यदि उसने अपने जीवनको विज्ञानकी पुनीत साधनामें निवेदित नहीं किया होता,—यदि वह रात-रात भर अपनी प्रयोगशालामें बैठकर सत्यकी किरणोंका विकल आह्वान इस अन्धकारित मायालोकमें नहीं करता रहता तो आज वैज्ञानिकवर्ग जिस स्थानपर है, वहां वह कदापि नहीं रहता। एक दिन एक राजनीतिक उच्चपदाधिकारी उस महाव्रती वैज्ञानिकसे मिलने गये। बहुत देर तक वे उसकी प्रयोगशालाकी विविध वस्तुओंका निरीक्षण करते रहे और उनके सम्बन्धमें जिज्ञासा भी करते रहे। अन्तमें, विदा ग्रहण करते समय उन्होंने फैराडेसे पूछा—"मि० फैराडे, एक बात तो बताइयेगा। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि ये सब चीजें काफी दिलचस्प हैं, लेकिन आखिर इनसे लाभ क्या है?"

लाभ क्या है?—मैं समझता हूं, अधिकांश सत्यान्वेषियोंको ऐसे मूर्खतापूर्ण प्रश्नोंका सम्मुखीन होना पड़ता होगा, क्योंकि इस ग्रहका प्राणि-समुदाय जीवित रहने और सन्तानोत्पादन करनेके अतिरिक्त अन्य जितने भी कार्य हैं, सबोंको महत्त्वहीन मानता है—निरर्थक समझता है! वह एक कविकी कविताका महत्व वहीं तक समझता है, जहांतक उससे उसके विवेक-हीन मनकी थ्रान्ति दूर होती है, ताकि वह अभिनव शक्तिसे सम्पन्न होकर जीवित रहनेके लिये सामग्री-संचयमें लग सके। गायककी मार्मिक गीत-ध्वनियां हों, या चित्रकारका अतिशय सुन्दर चित्र हो,—इन सबोंका महत्व

बस उतनी ही दूर तक है ! इसके आगे अपनेको इस ग्रहका ही नहीं इस बिराट विश्वका सर्वोत्कृष्ट प्राणी समझनेवाले मानवोंके लिये इनका कोई अर्थ नहीं—कोई मूल्य नहीं !

अनेकानेक पाठक मेरे इस कथन पर आपत्ति करेंगे। लेकिन वास्तविकता यही है। कला और विज्ञानके प्रति मानव-समुदायका एक नन्हा-सा भाग बाह्य श्रद्धा और सम्मान भले ही प्रकट कर दे लेकिन यदि वास्तवमें इनके प्रति उसके प्राणोंमें किसी प्रकारकी सशक्त आसक्ति रही होती तो अनेकानेक कलाकारों और वैज्ञानिकोंको इस प्रकार रोटीका सवाल हल करनेमें विवश हो अपने महत्वपूर्ण समयकी हत्या नहीं करनी पड़ती।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सत्यकी समस्त किरणोंका आगमन इस ग्रहपर वर्त्तमान परिस्थितियोंमें असम्भव है। किन्तु फिर भी जो कतिपय नन्हीं-नन्हीं किरणें भी आ सकती हैं, उनके लिये प्रयास न करके जोवनके कुत्सिततम एवं असुन्दरतम स्वरूपको स्वीकार करते हुए कीड़े मकोड़ोंकी तरह रेंगते रहना भी सर्वथा गर्हित ही है !

दुःखोंकी समस्त वारिदमालाएँ इस ग्रहके जीवन-व्योमसे तिरोहित हो जायं—यह तो सर्वथा असम्भव ही है। हाँ, प्रयास करके उन वारिद-मालाओंको चीरकर आनेवाली कतिपय आलोक-किरणोंसे पथको प्रशस्त अवश्य किया जा सकता है। लेकिन साधारण प्रयासोंसे यह कार्य सम्भव नहीं। इसके लिये महान् साधना एवं अक्लान्त तपस्याकी आवश्यकता है।

मानव-जातिकी इस वासस्थलीको सुषमित रूप प्रदान करनेकी क्षमता न तो राजनीतिज्ञोंमें है और न और किसी समुदाय विशेषमें ही। वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और कलाकारोंके अतिरिक्त इस हाहाकार भरे ग्रहके आँसुओंको पोंछनेमें और कोई भी समर्थ नहीं हो सकता !

इस ग्रहके असुन्दर और चीत्कारपूरित वातावरणमें कलाकार अपनी स्वर्गिक प्रतिभाके द्वारा सौन्दर्य और उल्लासका प्रसार करेगा। वैज्ञानिक यहाँके अधिवासियोंके पार्थिव अस्तित्वको अभिनव सुविधाएँ प्रदान करता हुआ दार्शनिक और कलाकार दोनोंके ही पथमें किरणें फेंकता चलेगा! दार्शनिक अज्ञानावृत जीवन-क्षितिजमें प्राभातिक आलोकका आवाहन करता हुआ इस निर्वासन-ग्रहके बन्दियोंको आश्वस्त करता चलेगा!

लेकिन ऐसा कब हो सकेगा?

अभी तो यह असम्भव ही दीखता है! राजनीतिज्ञों और व्यापारिकोंने इस पृथ्वीको आयत्त-सा कर लिया है और इसके प्राणोंके आर्त्तनादको उग्रतर करते चले जा रहे हैं। उनके साम्प्रतिक क्रिया-कलापसे उनका भी कोई लाभ नहीं है, प्रत्युत हानि ही है। लेकिन एक अन्ध उन्मादनाके वशवर्त्ती होकर ये नानाविध नारकीय प्रचेष्टाओंमें संलग्न हैं।

महान् वैज्ञानिकोंको ये अधिकारप्राप्त राजनीतिज्ञ अपने देशोंसे निर्वासित कर देते हैं,—उन्हें तरह-तरहकी यातनाएं देते हैं। क्योंकि वे उनकी इच्छाके अनुसार युद्ध-सामग्रियोंके निर्माणमें सहायता नहीं प्रदान करते। मानवी सभ्यताके पथको प्रशस्त करनेके लिये यदि किसी वैज्ञानिकको रुपयोंकी आवश्यकता होती है तो दुनियाँका कोई भी राष्ट्र उसका साथ देनेको तैयार नहीं होता, किन्तु यदि कोई वैज्ञानिक संहार-शस्त्रोंके नूतन आविष्करणोंमें प्रवृत्त होता है तो उसके पीछे रुपयोंको पानीकी तरह बहानेके लिये अनेक राष्ट्र समुद्यत हो जाते हैं।

मानव-जातिके पथ-प्रदर्शक एवं संचालक इस राजनीतिकवर्गकी यह मनोवृत्ति सभ्यताके उच्चतम स्तरकी परिचायिका है या निम्नतम स्तरकी, इसपर प्रकाश डालना निरर्थक है!

महान् कलाकारोंको ये अधिकारप्राप्त राजनीतिज्ञ अपने देशोंसे निर्वासित कर देते हैं,—उन्हें तरह-तरहके क्लेशोंसे संत्रस्त करते रहते हैं। क्योंकि वे उनकी इच्छाके अनुसार उनके विवेकिताहीन एवं असभ्यतापूर्ण सिद्धान्तोंका समर्थन नहीं करते। क्योंकि वे अपनी कृतियोंके द्वारा सत्य, शिव और सुन्दरका प्रचार इस ग्रहके वातावरणमें करनेका प्रयास करते हैं और उन अधिकारप्राप्त राजनीतिक नेताओंके सिद्धान्त सर्वथा असत्य, अशिव और असुन्दर होते हैं।

इस ग्रहका वह वर्ग जिसने अपनी प्रपञ्चप्रवीणता एवं कापटिकताके द्वारा पर्याप्त रजत एवं स्वर्णका सञ्चय कर लिया है, अपने सामने किसीको कुछ समझता ही नहीं। अपनी मिलोंको देख-देखकर वह प्रहृष्टमना होकर कहता है—'मैं जो चाहूं, कर सकता हूं। सुन्दरसे सुन्दर रमणी मेरी अंकशायिनी हो सकती है। दुनियाँके जिस हिस्सेमें मैं जाना चाहूं, जा सकता हूं और वहाँके अच्छेसे अच्छे मकानोंमें ठहर सकता हूं।"

कलाकारों, वैज्ञानिकों और दार्शनिकों को देखकर वह कहता है—"ये चाहे जितने महान् हों, मैं इन्हें अपमानित कर सकता हूं। रास्तेमें जिस समय ये पैदल चलते रहते हैं, मैं इनपर अपनी मोटरकी धूल उड़ा सकता हूं। ये मेरा क्या बिगाड़ लेंगे! शासक-सत्ता भी मेरा ही पक्ष लेगी; इन विचित्र व्यक्तियोंका नहीं!"

कई वृद्ध व्यक्तियोंको मैंने यह कहते हुए सुना है—"मैंने अपने अनवरत परिश्रमके द्वारा ही इतनी प्रशंसनीय उन्नति की है। मैं पहले बहुत निर्धन था। रहनेके लिये न घर था और खानेके लिये न अच्छा भोजन ही मिल पाता था। लेकिन बुद्धिमत्ता और अध्यवसायके बलपर मैं लखपती हो गया हूं। मैंने महल बनवा लिये हैं और सैकड़ों नौकर दिन रात मेरी आज्ञाके पालनके लिये तैयार रहते हैं।"

और लोग भी उसकी अट्टालिकाओंको, मोटरोंको और उसके ऐश्वर्यको देखकर कहते हैं—"सचमुच खूब उन्नति की इसने। कितना सौभाग्यशाली है यह! परिश्रमका फल सदैव मीठा ही होता है!"

अभी कलकी ही बात है। एक सज्जन कह रहे थे—"मैं अपनी उन्नतिके प्रयासमें जी जानसे लगा हुआ हूं। मैं चाहता हूं कि मैं अपने शहरका सबसे बड़ा वकील समझा जाऊं!"

इसी तरह एक नहीं, अनेक व्यक्ति—कतिपय अपवादोंको छोड़कर इस ग्रहके प्रायः सभी व्यक्ति महलोंके आवासको और रजत या स्वर्ण-मुद्राओंके सञ्चयन-कार्यको ही उन्नतिका प्रतीक समझते हैं! भला, आप ही सोचिये, जो लोग जीवनके समस्त क्षणोंको धनार्जनकी चिन्ताओंमें आबद्ध करके वृद्धावस्थामें लक्षाधीश या कोट्याधीश हो जाते हैं, उन्हें उन्नत कहना और उनके जीवनको सफल जीवन कहना एक भयानक और विघातक अबौद्धिकताका परिचायक नहीं है तो और क्या है?

मरण-संध्या चुपके से आयेगी और उनके जीवन-शतदलको विश्व-सरोवरकी लहरोंमें मुरझाना पड़ेगा ही! और उसीमें उनकी उस विचित्र उन्नतिकी निरर्थकताका सम्यक् परिचय लोगोंको मिल सकेगा! उनके महल खड़ेके खड़े रह जायंगे,—उनकी मोटरें ज्यों को त्यों रह जायँगी,—उनकी परिश्रम-सञ्चित स्वर्ण-मुद्राएं तिजोरियोंमें ज्यों की त्यों रह जायँगी! कोई भी उनका पथावरोध नहीं कर सकेगा! मरणके उपरान्त जिस पथका पथिक उन्हें बनना है, उसमें कोई भी उनको सहायताके लिये नहीं आयेगा!

फिर ऐसी उन्नतिको उन्नति कहना मस्तिष्क-दौर्बल्यका परिचायक नहीं है तो और क्या है?

आप बाजारमें जब कोई चीज खरीदने जाते हैं तो उचित मूल्य देकर ही वस्तुओंका क्रय करते हैं। कोई व्यक्ति कितना ही अमितव्ययी क्यों न हो, वह चौगुना मूल्य देकर वस्तुओंका क्रय कदापि नहीं करेगा। आपको आलूकी तरकारी खरीदनी है—सेर भरके करीब। आपको आलू बहुत पसन्द हैं तो आप रुपये सेर तक भी उन्हें खरीद सकते हैं, लेकिन यदि आप सेर भर आलू खरीदनेके लिये इतनी कीमत दे डालते हैं कि आपका घरतक नीलाम हो जाता है तो आप अपनी दृष्टिमें ही क्या ठहरियेगा?

कोई भी व्यक्ति क्यों न हो, जो इस प्रकारका आचरण करेगा, वह पागलके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझा जा सकता।

लेकिन, बड़े ही आश्चर्य और विक्षोभकी बात है कि जो लोग महलोंको प्राप्त करनेके लिये जीवन जैसी अमूल्य निधि दे डालते हैं, उन्हें सफल समझा जाता है—समुन्नत माना जाता है ! महलोंमें निवास करनेके लिये,—अपनी तिजोरियोंमें लाखों रुपये एकत्रित करनेके लिये और बहुमूल्य मोटरोंपर सैर सपाटे करनेके लिये जो लोग अपने जीवनके इन क्षणोंको बरबाद करते हैं, वे मेरी दृष्टिमें उस पागलसे कहीं बढ़-चढ़ कर हैं, जो सेर भर आलू प्राप्त करनेके लिये अपना घर बेच देता है !

मैं मानता हूं कि इस ग्रहकी वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थामें शारीरिक सुखके समस्त बाह्य साधन रुपयोंसे ही प्राप्त होते हैं। लेकिन उन साधनों की प्राप्ति करके ही क्या होगा, जब हमें इस ग्रहमें अधिक समयतक नहीं रहना है ! पथिक अपने यात्रा-पथमें यदि कहीं बैठकर विश्राम करता है या आगे चलनेकी नई योजनाएं बनाता है या कोई गीत गुनगुनाता है या किसी अन्य पथिकके गीतको सुनता है तो कोई बुरा नहीं करता। लेकिन यदि वहां बैठकर मकान बनवानेमें लग जाय,—कुए खोदने लगे,—खेती करनेमें जुट जाय तो उससे बढ़कर पागल कोई क्या होगा !

मृत्युका तम-श्यामल देवता नित्य किसी न किसीको अपने साथ ले जाता है—अन्य जीवन-यात्रियोंको यह बतलाने के लिये कि उन्हें यहां बहुत थोड़े समयतक रहना है !

फिर भी—कितनी ग्लानि और लज्जाकी बात है कि फिर भी हम धना-जनके या राज्यप्रसारके स्वप्न देखते रहते हैं !

(३०)

यह देश सर्वथा अपरिचित है, ऐसा निश्चयपूर्वक तो नहीं कहा जा सकता,—किन्तु इतना अवश्य है कि इससे हमारा घनिष्ट परिचय नहीं है। हो सकता है, वर्त्तमान जीवनके पहले भी हम कई जीवन इस देशमें बिता चुके हों,—हो सकता है, वर्त्तमान जीवनके पहले भी कई बार इस देशके सिकता-पथमें हमारे श्रम-जनित स्वेद-कण और वेदना-जनित अश्रुकण टपके हों,—हो सकता है, वर्त्तमान यात्राके पहले भी इस देशमें हमने कई बार जीवन-यात्राएं की हों और पथके पार्श्ववर्त्ती विटपी-दलकी छायामें बैठ कर नानाविध हर्ष-विषादपूर्ण गीत गाये हों। उन यात्रा-पथोंके अनुभव भी प्रच्छन्नरूपमें हमारे साथ हैं, किन्तु उनको लेकर भी हम इस देशको अपरिचित ही पाते हैं,—एक परायेपनका ही अनुभव करते हैं!

इस देशके सम्बन्धमें हम जितना जान सके हैं, उसपर विचार करनेके बाद जब हम इसपर विचार करते हैं कि हम कितना नहीं जान सके हैं, तो हमारी बुद्धि सिहर उठती है,—उसकी शिराएं काँप उठती हैं!

हमारे पास इतना समय भी तो नहीं है कि हम यहांके नियमोंसे पूर्ण अभिज्ञ होनेका प्रयास करना आरम्भ कर दें। पचास-साठ वर्षोंके इस नन्हे-से यात्राकालका एक बड़ा भाग तो बाल्यावस्था, निद्रा प्रभृतिमें चला जाता है! उसके बाद जो समय बचता है, वह वर्त्तमान मूर्खतापूर्ण सामाजिक व्यवस्थाके कारण रोटीका सवाल हल करनेमें लग जाता है! शेष समय बहुत ही थोड़ा रहता है! उसे हम अपनी खोयी हुई मंजिलको प्राप्त करनेके प्रयासोंमें न लगाकर यदि इस देशके नियमोंसे अभिज्ञ होनेमें लगाते हैं तो यह भीषण आत्मद्रोह ही समझा जाना चाहिए।

और, कठिनाई यह है कि इस हाहाकारित देशके नियमोंसे अभिज्ञ हुए बिना,—इस विचित्र रैनबसेरेकी विचित्रताओंसे परिचित हुए बिना आगे कदम बढ़ाना कठिन है! फिर हम हतभाग्य जीवन-यात्री करें तो क्या करें! मरणका देवता हमारे पास आकर हमें कहीं ले चलनेके लिये कब मचल उठेगा, यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। ऐसी अवस्थामें हमें अपना कर्त्तव्य-निर्धारण शीघ्र ही करना पड़ेगा, तभी हमारा कल्याण है,—तभी हम इस विचित्र मरुप्रदेश की सीमाको पार करके अपने पारिजात-काननमें पहुंच सकेंगे,—तभी कारण्डवोंके इस कठोर कर्णकटु क्रन्दनसे छुटकारा पाकर हम कोकिलकी काकली सुननेमें समर्थ हो सकेंगे।

आँसुओंका यह महासागर,—हाहाकार और चीत्कारकी यह रंगस्थली हमारे अनवरत परिश्रमके द्वारा अपनी वास्तविकताका उद्घाटन आंशिक रूपमें कर सकती है,—हमारी रात दिन की तपस्या और साधनाके द्वारा रूठा हुआ ज्ञानालोक फिर हमारे पथमें किरणें फेंक सकता है, किन्तु इस अनवरत परिश्रमके लिये,—रातदिनकी इस निदारुण तपस्या और

साधनाके लिये हमारे पास समय जो नहीं है। विवेचना-शक्तिके द्वारा हम इस अंधकारको विदीर्ण कर सकते है क्योंकि अननुभूतपूर्व, अश्रुतपूर्व एवं अदृष्टपूर्व परिस्थितियोंमें हमारी यही शक्ति हमें सहायता प्रदान करती है! और अबतक जितने भी तथ्य हमारे समक्ष इस देशके सम्बन्धमें उपस्थित हो सके हैं, उन सबोंसे जो विवेचना की जा सकती है, उसपर मैं पर्याप्त प्रकाश अन्यत्र डाल चुका हूँ।

जो देश ही अपना नहीं,—जहांकी रीति-नीति ही अपनी नहीं,—जहाँ का वातावरण कदम-कदमपर हमारे प्राणोंको संत्रस्त करता हो, वहां अत्यधिक ममता और स्नेहका प्रसार मूर्खताका द्योतक नहीं है तो और क्या है!

यहां रुककर प्रत्येक वस्तुको अच्छी तरह समझनेका प्रयास करनेमें यात्राके इस समयको नष्ट करने की अपेक्षा अच्छा तो यह होगा कि हम अपने इसी ऊबड़ खाबड़ पथपर चले चलें! कुदाली लेकर पथकी बन्धुरता दूर करनेका और उसे समतल बनानेका,—मार्गके झाड़-झंखाड़ोंको, कुश-कण्टकोंको साफ करनेका समय हमारे पास कहां है?

तब, चला कैसे जाय! जिस प्रकारके पथने हमें अपना पथिक बनाया है, वह कुश-कण्टकोंसे भरा पड़ा है! जमीन काफी ऊंचा नीची है! प्रत्येक कदमपर नीचे गिर पड़नेका भय रहता है! अन्धकार भी इतना निविड़ है—इतना भीषण है कि कुछ कदम चलना भी असंभव है! कबतक हम इस प्रकार प्रसन्नवदन ऐसे भीषण मार्गमें चलते रह सकेंगे! कुछ ही दूरीके बाद हमें मूर्छित होकर गिर जाना पड़ेगा,—हमारे चरणोंसे रुधिर-स्रोत प्रवाहित होने लगेगा!

वास्तवमें ये कठिनाइयाँ हैं और इनको दूर करना वर्त्तमान परिस्थिति-योंमें असम्भव ही हो गया होता, यदि.......

—०—

(३१)

....यदि हमें वह दीप नहीं मिल गया होता, जिसकी महत्तापर सारा विश्व विस्मित है ! हमें केवल उस दीपको प्रज्वलित करना है ! उसके स्निग्ध आलोक में हम पथके कुश-कण्टकोंसे ही अपने चरणोंको नहीं बचा सकेंगे,—ठोकर खाकर गिर पड़नेसे ही हम अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे,—हमारे थके हारे प्राणोंको एक बल प्राप्त होगा,—वह बल, जिसे हम इस देशमें खो चुके हैं !

साथ हो, हमें दूरदेशों की आकुल निगाहें भी देख सकेंगी और हमारी सहायता कर सकेंगी । इस भीषण तमिस्रामें वे हमें देख सकेंगी, इसकी कल्पना निराधार है । किन्तु उस अनुपमेय दीप की दीप्तिमें हमारा परिश्रान्त शरीर,—हमारी अश्रु-सजल आंखें,—हमारे काँपते हुए चरण उन्हें साफ-साफ दिखलायी देने लगेंगे !

वह दीपक है प्रेमका,—सौंदर्यके प्रगाढ़ प्रेमका !

सौंदर्यके सम्बन्धमें अपने विचारोंकी अभिव्यक्ति अन्यत्र कर चुका हूं ।

विज्ञान की विश्लेषणात्मक पद्धति इसके परिज्ञानमें कभी समर्थ नहीं हो सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस प्रकार हमारा शाश्वत व्यक्तित्व हमारे इस पार्थिव व्यक्तित्वसे संश्लिष्ट होकर हमारा मानवी व्यक्तित्व बन गया है, उसी प्रकार भौतिक सौन्दर्यात्मक आकर्षण और आत्मिक सौन्दर्यात्मक आकर्षणके संश्लेषणसे ही हमारा वर्त्तमान मानवी सौंदर्याकर्षण समुद्भूत है। सौंदर्यमें ही क्यों, हमारे जीवनकी प्रत्येक घटनामें,—प्रत्येक क्रियाकलापमें,—हमारे प्रत्येक पदनिक्षेपमें पार्थिव और शाश्वत व्यक्तित्वका यह संश्लेषण ही कार्यकर रहता है। जो व्यक्ति इन क्रिया-कलापोंको केवल अपार्थिव आधार प्रदान करते हैं, वे भी गलती करते हैं और जो केवल पार्थिव आधार प्रदान करते हैं, वे भी। वैशिष्ट्य यही है कि किसी व्यक्तिमें शाश्वत व्यक्तित्वका प्राधान्य रहता है,किसी में पार्थिव व्यक्तित्व का। लेकिन ऐसे व्यक्तियोंकी संखया बहुत कम होती है, जिनका शाश्वत व्यक्तित्व पार्थिव व्यक्तित्वकी अपेक्षा अधिक सबल हो,—उसके बन्धनोंसे अधिक मुक्त हो। लाखमें नौ हजार नौ सौ निन्यानवे व्यक्तियोंका पार्थिव व्यक्तित्व ही उनके शाश्वत व्यक्तित्वका शासक रहता है;शाश्वत व्यक्तित्व मूर्च्छनाकी-सी अवस्थामें रहता है। इसीलिये इस ग्रहके करोड़ों मानवोंके जीवन में और अन्य पशुओंके जीवनमें कोई अन्तर नहीं दिखलायी देता। इसीलिये क्षुधा और योनिजन्य तृप्तिके लिये ही मानवोंके समस्त व्यापार सम्पन्न होते हुए दिखलायी देते हैं।

लेकिन इसीलिये यह कहना कि क्षुधा और काम-वासना ही मानवोंकी सर्वाधिक सशक्त प्रेरक शक्तियाँ है, एक भीषण अज्ञता है।

प्रकृतिने मानवोंको बंधनोंमें डाला है, इसमें कोई सन्देह नहीं, लेकिन मानवोंने भी अपने अस्तित्वको बंधनग्रस्त करनेमें कोई कसर अपनी तरफसे

नहीं उठा रखी है। ठीक उसी तरह जिस तरह किसी नटखट शिशुको चार पैसोंके स्थानपर दो ही पैसे पिताके द्वारा मिलते हैं तो वह उन्हें भी फेंक देता है और रोने लगता है।

लेकिन यह रोना कबतक? कुछ देरके बाद वह रोना भूल जाता है,—यह भी भूल जाता है कि उसके पिताने उसे दो पैसे दिये थे और उसने चार पैसे मांगे थे और जाकर फिर लड़कोंके साथ खेलने लगता है।

मानवोंने अन्य बंधनोंमें अपने को बाँधा सो तो बाँधा लेकिन प्रेम और सौंदर्याकर्षणको भी अपने विचित्र नियमोंके द्वारा बंधनग्रस्त करके भयावनी भूल की है।

मैं इस बातपर प्रकाश डाल चुका हूं कि सौंदर्य हमारी बौद्धिक क्षमताकी वृद्धि करनेमें अद्वितीय है,—साथ ही उसका सशक्त और सतेज आकर्षण हमें बहुत तीव्र गतिसे उस ओर ले जा सकता है, जहां सत्यकी किरणें फैल रही हैं।

सौंदर्यके साथ इस ग्रहमें काम-वासनाका घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया हैं। सौंदर्याकर्षणके साथ सेक्सके सम्बन्धकी याद आ ही जाती है।

लेकिन उन पथिकोंको जो साधनाके पथमें दीपककी तलाश कर रहे हैं, इस घनिष्ट सम्बन्धको विच्छिन्न करके सौंदर्य और प्रेममें घनिष्ट सम्बन्धकी स्थापना करते हुए कदम आगे बढ़ाने चाहिए।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि चुम्बन, आलिङ्गन प्रभृति कार्यों में जिस प्रकारका शरीर अधिक सुखकर होता है, वही हमें सुन्दर प्रतीत होता है; लेकिन यह कहना कि इन कार्यों में वह विशिष्ट शरीर हमें अन्य शरीरोंकी अपेक्षा अधिक सुख प्रदान करता है, इसीलिये वह सुंदर है, सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण सिद्धान्त है।

सारेके सारे योरपीय साहित्यको हानिकारक और पागलपनसे पूर्ण बतलानेवाले मैक्स नारडूके पथप्रदर्शक कतिपय जर्मन विद्वानों ने तो यहां तक कह दिया है कि सौंदर्य की कोई महत्ता नहीं है; विशिष्ट रंगोंके सम्मिश्रण,—वस्तुओंके विशिष्ट अनुपात,—स्वरका विशिष्ट उतार चढ़ाव हमारी ज्ञानवाहिनी शिराओं के अनुकूल होता है, इसीलिये सुंदर प्रतीत होता है। और इस प्रकार वे सौंदर्यको कोई भी अभौतिक आधार देनेको तैयार नहीं। लेकिन उनकी सौंदर्य-परिभाषा केवल अनुमान पर आधारित होनेके कारण ही तिरस्करणीय नहीं है, वह सौंदर्य की अभौतिकताको किसी अंशमें भी खण्डित नहीं कर पाती। शारीरिक सुखात्मक संवेदन सौंदर्यके साथ सम्बद्ध हैं और उन्हें होना भी चाहिए। शारीरिक दुःखात्मक संवेदन असौन्दर्यके साथ सम्बद्ध हैं, और उन्हें होना भी चाहिये। लेकिन सौन्दर्यकी सत्ता इन दोनोंसे परे हैं; वह इनसे समुद्भूत नहीं है।

सौंदर्यके प्रति प्रगाढ़ आकर्षणके नानाविध रूप हैं। कुछ अतिशय उन्नत हैं, कुछ अतिशय अवनत। जिनमें शारीरिक आकर्षणके प्राबल्यकी अपेक्षा चिरन्तन व्यक्तित्वके आकर्षणका प्राबल्य हो, वह उन्नत रूप है। एक रूप ऐसा भी है, जिसमें पार्थिव व्यक्तित्वके आकर्षणका सर्वथा विलोप-साधन हो जाता है और केवल प्रगाढ़, प्रखर, सतेज, शाश्वत व्यक्तित्वका आकर्षण ही रह जाता है। लेकिन इस देशमें जीवन-यात्राकालमें इस स्थितिकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है।

अपार्थिव व्यक्तित्वके सौंदर्याकर्षणके साथ-साथ पार्थिव व्यक्तित्वका आकर्षण संश्लिष्ट हो जाता है तो इससे कोई महती हानि नहीं हैं!—हां, योनिजन्य परितृप्ति की कामनासे अपनेको अलग रखना चाहिये! साधारण व्यक्तियोंमें

यह क्षमता नहीं के बराबर ही होती है। किन्तु ऐसे असाधारण व्यक्तियोंका भी अभाव इस देशमें नहीं है,जिनके सौंदर्याकर्षणमें पार्थिव और अपार्थिव व्यक्तित्वों का संश्लेषण होते हुए भी योनिजन्य वासनाओंका समुद्भाव नहीं हो पाता है!

सौन्दर्य क्या है, क्यों है,—प्रभृति प्रश्नोंपर विचार करनेसे कोई निष्कर्ष नहीं निकल पाता है! किन्तु इतना तो सत्य है कि सौन्दर्य इस आंसुओंके देशमें चाँदनीकी रजत-शुभ्र मुसकान है!—इस सुनिविड़ तिमिर-जालमें कौमुदीका विमोहक प्रसार है! और, भ्रम और संशयसे परिपूर्ण अपने यात्रा-पथमें हमें अश्रु-सजल नयनोंसे इसीकी ओर देखना होगा!

उपाय तो और भी हैं, किन्तु हमें उनमें सफलता प्राप्त हो सकेगी, इसकी आशा वर्त्तमान परिस्थितियोंमें नहीं के ही बराबर है! मार्ग तो और भी हैं, लेकिन उनपर चलनेकी क्षमता हममें अन्त तक जीवित रह सकेगी, इसकी आशाका पोषण करना भी निराधार है!

सौन्दर्यको अनेक विचारकोंने,—जीवन-पथके अनेक यात्रियोंने मरीचिका के नामसे अभिहित किया है!......हो सकता है, सौंदर्य मरीचिका ही हो—इस मरुस्थलीके अभिशापित यात्रीको प्रवञ्चित करके मार डालनेके लिये ही किसीने इस निर्मोह मिथ्याजल-तरंगकी उद्भावना की हो! किन्तु इससे हमारे थके हारे प्राणों को बल तो प्राप्त होता है!—हमारे रुधिरमें एक दुर्दमनीय कर्मोन्मादना तो जागृत होती है,—पथपर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ानेके लिये एक भयङ्कर बेचैनी तो हमारे प्राणोंमें छा जाती है!

फिर भले ही हमारा प्रेरक मरीचिकाकी मोहनमाया बनकर लुप्त हो जाय, हम तो अपनी राहमें उसके सहारे लाखों कदम आगे बढ़ चुके होंगे!

मान लीजिये, आपके सौन्दर्याकर्षण का केन्द्र कोई है ! यदि आपके इस आकर्षणमें शाश्वत व्यक्तित्वका प्राधान्य रहा और योनिजन्य वासनाओंकी तृप्ति कामनाका ऐकान्तिक अभाव रहा तो आप अत्यल्प कालमें ही उस केन्द्रको अतिशय महान् रूपमें देखने लगेंगे ! उसमें आपको देवत्वका आभास मिलने लगेगा। हो सकता है, कुछ कदम और आगे बढ़ने पर ईश्वरत्वका भी आभास मिलने लगे। संसारकी अन्य विभूतियाँ उसके सामने सर्वथा निस्सार सर्वथा नगण्य और महत्वहीन प्रतीत होने लगेंगी !

यहाँ तक कि संसारके नियामक को भी आप देखना चाहियेगा तो उसी सुषमाके रूपमें, जिसका आकर्षण आपके कण-कणको मद-विभोर कर रहा है।

लेकिन दुनियांके दूसरे व्यक्तियोंकी दृष्टिमें तो आपके आकर्षणका वह केन्द्र कुछ भी महत्ता नहीं रखता ! वैज्ञानिक उसे कुछ गैलन पानी, कुछ पाउंड कार्बन और चूना, कुछ हवा, एक या दो आउन्स फोस्फोरस, कुछ ड्राम लोहा

थोड़ा सा लवण, तनिक सी गन्धक और कुछ और द्रव्योंके एक इन्द्रियानन्दकारी सम्मिश्रण के रूपमें देखेगा। मनोविज्ञानवेत्ता उसके आचरणका,—उसके मुखसे विनिर्गत वाक्योंका विश्लेषण करता हुआ उसके जीवनकी कालिमासे अभिज्ञ होता चलेगा। साधारण व्यक्ति उसे एक साधारण किन्तु कोमल हस्तीके रूपमें देखते होंगे! उसके पिता, उसकी माता, उसके भाई उसके नौकर,—इसी प्रकार अन्य समस्त व्यक्तियोंकी दृष्टिमें उस सुषमा-केन्द्रके जो स्वरूप होंगे, वे भिन्न-भिन्न होंगे।

लेकिन उन लोगोंकी भिन्नताओंमें उतना अन्तर नहीं होगा, जितना उन सबोंके दृष्टिकोणोंसे आपके दृष्टिकोणका। उसे वे लोग नानारूपसे देखेंगे, किन्तु मानवोंके स्तरसे उसे कोई भी ऊपर नहीं चढ़ायेगा! वैज्ञानिक उसे उस स्तरसे बिल्कुल नीचे ले जाकर कीड़े मकोड़ोंसे मिला भले ही दे! यह तो आप ही होंगे जो उसको देवताका बाना पहनाते हुए भी संकुचित होंगे!

मैं नहीं जानता, सूरका कृष्ण कौन था, तुलसीका राम कौन था,—रसखानका मोहन कौन था और मीराका गिरधरनागर कौन था! हो सकता है, इन आकर्षणोंका—शाश्वत व्यक्तित्वोंके इन सुमहान् लोकदुर्लभ आकर्षणोंका कोई भी भौतिक आधार न रहा हो। हो सकता है, ये आरम्भसे ही पार्थिव-वासनाओंके बंधनोंसे विनिर्मुक्त रहे हों लेकिन यदि ऐसा नहीं भी रहा हो,—यदि इन सुमहान् आकर्षणोंका केन्द्र अन्त तक पार्थिव रहा हो, तब भी कोई महत्व-हानि नहीं होती। अपने आकर्षण-केन्द्रको रामायणके रामके रूपमें तुलसीका देखना और उसकी लकुटी और कामरियापर तीनों लोकका आधिपत्य ठुकरानेको रसखानका तैयार रहना युगयुगान्त तक अन्य पथिकोंको आलोक प्रदान करते रहेंगे।

और अन्य उपासकोंको बताते रहेंगे कि देखो प्रेम इसे कहते हैं,—इश्क ऐसे करना होता है।

कभी कभी आपकी विवेचना-शक्ति स्वयं आपका उपहास करना आरम्भ कर देगी। वह आपको बतायेगी कि आपने जो मार्ग अपनाया है, वह गलत है और आपको मंजिलतक तो क्या खाक पहुँचायेगा,—विश्व-विपिनकी इन अनेकानेक दुर्गम कण्टकावृत वीथियोंमें फँसाकर मार डालेगा। आपको अपने ही ऊपर संशय होन लगेगा और आपके पाँव लड़खड़ाने लगेंगे।

आप सोचने लगियेगा—"यह मैं क्या कर रहा हूँ; मृत्तिका की पुत्तलिकामें देवत्वका आरोप करके मैं कैसा भीषण पागलपन कर रहा हूं; जानबूझ कर इस मृगतृष्णिकाके द्वारा इस प्रकार मैं क्यों प्रवञ्चित हो रहा हू !"

लेकिन, ऐसा सोचकर यदि आप अपनी गति रोक देंगे तो यह एक घातक गलती होगी।

वस्तुओंको देखनेके कोटिशः दृष्टिकोण हैं। कौन-सा दृष्टिकोण सत्य है, यह कोई नहीं कह सकता। वैज्ञानिक प्रगतिके द्वारा वस्तुओंको देखनेके साधारण दृष्टिकोणोंकी निस्सारता सिद्ध हो चली है। हम जान गये हैं और निश्चयपूर्वक जान गये हैं कि संसार वैसा नहीं है, जैसा हम इसे अपनी ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा पा रहे हैं।

वर्त्तमान कारागारमें रह कर हम वस्तुओंकी वास्तविकतासे अभिज्ञ नहीं हो सकते, किन्तु अपने दृष्टिकोणको तो उन्नत और सुन्दरतम रूप प्रदान कर सकते हैं।

निर्जन विजन-वीथिमें किसी पल्लवित शाखापर प्रस्फुटित हो उठनेवाले पुष्पको नानाविध दृष्टिसे देखा जाता है; कोई भी दृष्टिकोण सत्यपर आधा-

रित होने का दावा नहीं कर सकता किन्तु उन समस्त दृष्टिकोणोंमें कौनस दृष्टिकोण सबसे सुंदर है यह तो हम जान सकते हैं।

क्योंकि इस दुनियाँमें सत्यकी किरणोंने भले ही हमारा साथ छोड़ दिया हो;—भले ही इस अन्धकारित पथमें हमारी एक भी क्रन्दन-ध्वनि सत्य तक नहीं पहुंच पाती हो, लेकिन सौंदर्य की चंद्र-किरणोंने हमारा साथ नहीं छोड़ा है। वे इस नरक-लोकमें भी रह रहकर हमारा पथ आलोकित करनेके लिये पहुंच जाती हैं।

यदि इतना होते हुए भी हम उसकी ओरसे आँखें मूंद लेते हैं तो इससे बढ़कर अविवेकिता और क्या होगी!

जीवनके इस क्रन्दन भरे पथमें चलते-चलते जो सुषमाका केन्द्र आपको प्राप्त हो गया है, उसके प्रति औरोंका क्या दृष्टिकोण है, इसपर आप ध्यान न दें; आपका दृष्टिकोण सबसे सुंदर होना चाहिए, बस यही पर्याप्त है। दृष्टिकोणों की सत्यताकी ओर आप न जायें; आपने यदि सुंदर को पा लिया है तो इस अश्रु-सजल देशमें सब कुछ पा लिया है।

आपका 'सुन्दर' ही आपको आपके 'सत्य' के पास पहुँचा देगा।

यद्यतविभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं ममतेजोंऽश सम्भवम्।

इस लोकके अन्धकारित वातावरणमें जो सौन्दर्यकी किरणें आपके जीवन-पथमें आ पहुंची हैं, उनका सदुपयोग यदि आपने किया तो उन्हींके सहारे आप वहां तक पहुंच जाइयेगा, जहां पहुंचनेके बाद फिर कहीं पहुँचना शेष नहीं रह जाता,—जिसको प्राप्त करनेके उपरान्त फिर कुछ प्राप्त करनेकी वासना

अवशिष्ट नहीं रह जाती,—जिस स्थितिमें गुरुतम दुःख भी आपको विचलित नहीं कर सकते !

सौन्दर्य अज्ञानियोंके लिये मायाका सर्वाधिक सशक्त पाश सिद्ध होता है, क्योंकि उनका दृष्टिकोण भौतिक स्तरसे ऊपर नहीं उठ पाता, किन्तु विवेकियों के लिये वही सौन्दर्य संसार-सागरके उस पार ले जानेवाली स्वर्ण-तरी सिद्ध होता है !

बिल्वमंगल, तुलसी, रसखान प्रभृतिकी जीवन-गाथा पढ़िये ।

उस चिर सुन्दरकी रूप-किरणोंकी छाया इस माया-लोकमें यत्र-तत्र दृष्टिगत होती है । उनके सहारे उस तक पहुंचनेका जो प्रयास करेंगे, वे विफल-मनोरथ नहीं हो सकते ।

या यों समझिये । संसारकी पाठशालामें इश्कका पाठ पढ़ कर तब उसके कूचेमें आसानीसे कदम रखा जा सकता है ।

लेकिन, पाठ इश्कका हो, वासनाका नहीं ।

—०—

हमें बहुत दूर जाना है—बहुत दूर।

उस दूरीकी कल्पना भी आज हमारा बंधनग्रस्त मन नहीं कर सकता। करोड़ों सौरमण्डलोंको,—अरबों ग्रहों, उपग्रहोंको पार करके हमें वहां पहुँचना है, जहाँ पहुंचे बिना हमारी यह बेचैनी दूर नहीं हो सकती;—जहाँ पहुंच कर किसीके सौरभमय श्री-चरणोंपर यात्रा-पथके अनुभव निवेदित करनेके लिये हमारे प्राण छटपटा रहे हैं।

जरा हम एक बार आँखें खोलकर देखें भी तो कि हम कहाँ आ गये हैं—किस विचित्र जादूके देशमें बन्धनग्रस्त हो गये हैं।

कहीं युद्ध हो रहे हैं,—कहीं डकैतियाँ हो रही हैं,—कहीं व्यभिचार हो रहा है,—कहीं लोग हंस रहे हैं,—कहीं रो रहे हैं,—कहीं शादियाँ हो रहीं हैं—कहीं चिताएं जल रही हैं।

और इस विचित्र वातावरणमें पड़कर आखिर हम क्या कर रहे हैं,—यह सोचना हमारे लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

इस दुनियाँके सम्बन्धमें हम निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं जान सकते,—केवल अनुमान भर कर सकते हैं, किन्तु हम स्वयं क्या कर रहे हैं, यह तो सरलतापूर्वक जाना जा सकता है। इसमें तो आनुमानिक कठिनाइयोंका कोई प्रश्न ही नहीं है!

और यह जानकर भी कि हम जो कर रहे हैं, वह ठीक नहीं है, अपने क्रिया-कलापको यदि हम शुद्ध स्वरूप देनेका प्रयास नहीं करते तो क्या यह हमारा पागलपन नहीं है? और यदि यह संसार एक तमाशा हुआ—एक मजाक हुआ, तब तो कोई बात नहीं है, किन्तु यदि ऐसा नहीं हुआ,—यदि यह दुनियाँ वास्तवमें कोई सीरियस-सी चीज हुई, तब?

तब हमारी क्या अवस्था होगी?

हमारा पारिपार्श्विक वातावरण हमें अनेकानेक मूर्खतापूर्ण कार्योंमें फँस जानेके लिये विवश कर डालता है—यह मैं मानता हूँ। लेकिन साथ ही यह भी मानता हूँ कि हम अपनी पारिपार्श्विक परिस्थितियोंसे अपनेको अधिक सशक्त सिद्ध कर सकते हैं! अपनी परिस्थितियोंको हम परिवर्त्तित न भी कर सकें तो कमसे कम इतनी क्षमता तो हममें अवश्य है कि हम उससे पराभूत न हों।

और यदि हम अपनेमें वह क्षमता नहीं पाते हैं तो यह हमारा दोष है। शक्ति हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है! उसे हम अपनी मूर्खतासे खोते हैं। हमें अपने ही अदम्य उद्योगोंसे उसकी पुनर्प्राप्ति करनी होगी।

जब हम देखते हैं कि जो लोग हमारे साथ-साथ जीवन-पथपर चल रहे हैं, वे सबके सब धनार्जनके पीछे पागल हो रहे हैं,—दिवसका विश्राम और नैश निद्राका परित्याग करके रजतमुद्राओंके सञ्चयन-कार्यमें जी जानसे

जुटे हुए हैं, तब हमें भी अपने ऊपर अविश्वास-सा होने लगता है। हम सोचने लगते हैं—"क्या इतने-इतने यात्री मूर्ख हैं जो धनार्जनमें लगे हुए हैं।"

और साथ ही हम यह भी देखते हैं कि इस ग्रहकी समस्त शारीरिक सुखकी सामग्रियाँ रुपयोंसे उपलब्ध हो जाती हैं। भूख लगी, रुपये चाहिये। यात्राकी आवश्यकता हुई, रुपये चाहिये। किताबें पढ़कर अपने ज्ञानकी वृद्धि करनेकी आकांक्षा जागृत हुई, रुपये चाहिये। ऐसी अवस्थामें आप भी विवश हो कर अन्य जीवन-यात्रियोंका साथ देने लगते हैं और कवियों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकोंकी ओर देख-देख कर दुनियांवालोंके स्वरमें स्वर मिला कर कहने लगते हैं—'वे सबके सब पागल हैं—पागल।'

लेकिन पागल कौन है,—आत्मद्रोही कौन है,—यात्रा-पथके बहुमूल्य क्षणोंको बरबाद कौन कर रहा है, यह तो काली साड़ी पहन कर चुपकेसे आकर किसी दिन जीवन-दीपको बुझा देनेवाली मृत्यु रूपसी ही बता सकेगी।

कलकी सी ही बात मालूम हो रही है। राँचीके एक प्रसिद्ध पूँजीपतिकी क्षण भरमें मृत्यु हो गयी। मृत्युके कुछ ही क्षण पहले वे मुद्राओंकी संख्याओं को विवर्धित करनेके साधनोंके सम्बन्धमें ऊहापोह कर रहे थे! सोचा भी नहीं था कि उस दिनका सान्ध्य विहग-कुल-रोर वे सुन सकेंगे या नहीं। और एकाएक मृत्युकी एक फूँकने ही उनके दीपको बुझा दिया।

लोग रो रहे थे,—औरतें रो रही थीं,—बच्चे रो रहे थे,—वृद्ध भी रो रहे थे। जो नहीं रो रहे थे उन्होंने रोनी सूरत अवश्य बना रखी थी। मैं वहाँ नहीं था, यह अच्छा ही हुआ। मैं रोनी सूरत कभी नहीं बना पाता।

उस सेठकी मौतको पन्द्रह-सोलह दिन हो गये। जो लोग उस दिन रो

रहे थे,—जीवनकी निस्सारता और अर्थहीनता पर वार्त्तालाप कर रहे थे, वे उस लक्षाधीशकी अपेक्षा चौगुने उत्साहके साथ धनार्जन और संतानोत्पादनके कार्यमें लगे हुए हैं। वे मृत्युकी वह आगमनी विस्मृत कर चुके हैं, जिसमें क्रन्दन-ध्वनियोंका प्राधान्य था !

सब कुछ भूलकर—चिताकी उन कनकवर्ण लपटोंको विस्मृत करके वे सबके सब फिर उस काममें लग गये है, जिसमें मृत्युके देशमें चला जानेवाला वह लक्षाधीश लगा हुआ था।

जब आप अपने वातावरणमें ऐसी-ऐसी विचित्रताएँ पाइयेगा, तब यह असंभव नहीं कि आपको भी उन्हीं लोगोंका साथ देना पड़े, जिनकी संख्या अधिक है।

लेकिन, यह एक महाभयानक आत्मद्रोह होगा।

× × × ×

जीवन एक यात्रा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। हमें कहीं न कहीं पहुंचना भी है। हमारी यह यात्रा निरुद्देश्य नहीं हो सकती। अब यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम अपने गन्तव्य स्थान तक एक जन्ममें पहुँचें, या कई जन्मोंमें।

हमें बहुत दूर जाना है—यह तो हम जान ही गये हैं। हमारी वर्त्तमान परिस्थितियोंकी कुत्सा और असुन्दरता ही इस दूरी पर स्पष्ट प्रकाश डाल रही है। ऐसी अवस्थामें यदि हम अनवरत और अक्लान्त पद-सञ्चालनसे उपरत होकर विश्रामकी ओर उन्मुख होते हैं तो क्या यह हमारा भीषण आत्मद्रोह नहीं है ?

विश्राम ?—जूलियट ;तो कहीं दूर मौतकी घड़ियाँ गिन रही हो और

रोमियो विश्राम करे ? शीरी कहीं दूर पड़ी-पड़ी खून उगल रही हो और फरहाद विश्रामके सुखकी लालसा करे ?—धिक्कार है उसे !!

हमें विश्राम कहाँ ? हमें तो चलना है,—प्रतिक्षण, प्रतिपल !—अनवरत, अक्लान्त । हमें तो विश्राम वहीं ग्रहण करना है, जहां इस अज्ञानके घातक अन्धकारकी छलनाओंसे मुक्त हो कर हम किसी चिरसुन्दर देवताकी दीपमाला के आलोकसे स्नात हो सकेंगे।

शैशवकालसे हमारी इस यात्राका आरम्भ होता है, ऐसी बात नहीं है । हाँ, यात्राके एक अध्यायका आरम्भ शैशवसे अवश्य होता है । लड़खड़ाते चरणोंसे हमारे कदम अपनी राहपर पड़ते हैं,—टेढ़े, मेढ़े, अटपटे । जब होश सम्हलता है, पैरोंमें कुछ शक्तिका सञ्चार हो पाता है, उस समय ही हमारी यात्रा होती है । उसके बाद तो फिर वृद्धावस्था चरणोंको डगमग करने लगती है । यात्रा-कालका बहुत थोड़ा समय ऐसा मिल पाता है, जिसमें हमारे चरण शक्तिपूर्वक आगेको अविचल गतिसे बढ़नेकी क्षमता रख पाते हैं । उस थोड़े से समयका समुचित उपयोग न करके यदि हम उसे नवीन-जीवन-यात्रियोंके लिये शरीर निर्माण करनेमें और उस क्रियाके द्वारा समुत्पन्न सुखका रसास्वादन करनेमें ही लगाते हैं तो यह पागलोंका-सा ही आचरण है ।

हो सकता है, हमारी वर्त्तमान जीवन-यात्रा मृत्युके बाद होनेवाली यात्रा की एक तैयारी मात्र हो । ऐसी अवस्थामें तो हमें और भी सचेत रहना चाहिये । साधारण यात्राओंके लिये जब हम इतनी तैयारियाँ करते हैं तो फिर इस यात्राका तो कहना ही क्या है । हमारे शत्रुओंकी संख्या अपर्याप्त नहीं । वे सदैव हमारे पथावरोधका प्रयास करते रहते हैं । हम अपनी मंजिल तक न पहुंच सकें, इसके लिये वे निरन्तर सचेष्ट रहते हैं । और, जैसा कि

में आरम्भिक अध्यायोंमें प्रकाश डाल चुका हूँ इनमें अधिकांश हमारे मित्रो रूप ग्रहण करके हमारे यात्रा-पथमें आते हैं,—हमें पथ-भ्रमित करनेके लि

हमारे सहायक हमारी सहायतासे पराङ्मुख हैं, ऐसी बात नहीं है कि इस मायामय वातावरणमें वे मुक्त रूपसे हमारी सहायता नहीं कर सकते उनकी कठिनाइयाँ उस समय और भी बढ़ जाती हैं जब वे यह देखते हैं जिनकी वे इतनी तन्मयताके साथ सहायना कर रहे हैं, वे उससे लाभ उठ को समुत्सुक नहीं।

लेकिन हमारे शत्रुओंकी संख्या अधिक होते हुए भी हमारे सहायकं विजय होगी। क्षितिजसे गर्जना करती आनेवाली मेघमालाके निविड़ होने भी सूर्य-किरणें उनका अन्धकारित वक्ष विदीर्ण करके हम तक पहुंच सक और हमारा मार्ग ज्योतित करनेमें सक्षम होगी।

हमें इस ऐन्द्रजालिक दृश्यावलीसे, इस प्रवञ्चनामय लोककी विचित्रताअ अपनेको असम्बद्ध रखते हुए अपनी मञ्जिलकी ओर कदम बढ़ाना होगा। स ओरसे जादूगरोंके इशारे हमें अपनी-अपनी ओर बुलानेके लिये होंगे, वि हमें अपने ही दीपककी आभासे अपने पथको पहचानते हुए चलना पड़ेगा, अपनी उस पावनी मंजिलकी ओर, जहाँ बिछुड़ा मनका मीत सोत्सुक द हमारी प्रतीक्षा कर रहा है।

जो हो, इस सौर-मण्डलमें हमारी अवस्था वैसी ही है, जैसी उन किशोरों की होती है, जो विपिन-यात्रा करते तो हैं चित्त-रञ्जनके लिये, किन्तु अपनी राह भूल जाते हैं और अमावसकी आधीरातके भयावने सन्नाटेमें आहें भरते रहते हैं! इतनेमें ही कुछ विपिनवासी आते हैं और उन्हें बन्धनग्रस्त बना डालते हैं, साथही क्षुधा और तृषाकी अधिकतासे उनके शरीरको अशक्त भी।

ऐसी अवस्थामें यदि वे किशोर साहस और धैर्यका परित्याग कर देते हैं तो उनकी क्या अवस्था होगी? और यदि उन बन्धनोंसे मुक्त होकर घर तक पहुंचाने वाले मार्गका अन्वेषण करनेका अक्लान्त उद्योग न करके वे उसी अपरिचित, अभिनव और विचित्र वन-प्रान्तरको ही अपना अधिवास बना लें और उन कानन-निवासियोंको ही हमदम मानने लगें, तब तो उनका सर्वनाश ही समझना चाहिये!

उनके घरवाले उत्कण्ठित होकर उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

उनकी माताएँ अश्रु-आविल दृगोंसे उनकी राह देख रही होंगी। उनके संगी-साथी उत्पीड़ित होकर उन्हें खोज रहे होंगे।

उन्हें चाहिये कि वे हृदयमें बलका संचार करें,—अपनी दुरवस्थाको दूर करनेके लिये अहर्निश उद्योग करें। तभी वे वहाँके बन्धनोंसे परित्राण पा सकते हैं और अपने घरकी सच्ची राहका पता लगाकर वापस आ सकते हैं। अन्यथा उनकी अवस्था अतिशय कारुणिक हो जायेगी।

यह सौरमण्डल हमारे पथ-श्रम-जर्जर शरीरका रैनबसेरा ही बना था, लेकिन हमें क्या पता था कि हमारे भाग्यमें इस ग्रहका बन्दी-जीवन भी लिखा है।

आज ऊपर सुनील अन्तरिक्ष है, कृष्णपक्षकी यामिनीके द्वारा जलाये गये स्वर्ण-दीपकोंसे परिपूरित। और नीचे यह वसुन्धरा है। भरमायी हुई नैश जागरणसे थकित आँखोंके सामने सहस्रों छलनाएँ नाच रही हैं। ऐसी हाला पिला दी गयी है कि यह भी ज्ञात नहीं कि कहाँसे आये और कहाँ जाना है। जो अपना था, वह पराया मालूम हो रहा है और जो पराया था, वह अपना। जिस लोकका नाम तक नहीं सुना था, उसीमें आज आवास करना पड़ रहा है और जिन लोकोंकी श्री-सुषमासे हृदयके प्रत्येक कणका सम्बन्ध था, उसकी स्मृतिकी चन्द्र-किरणें भी विस्मरणके भीषण तिमिरमें नष्ट हो गयी हैं।

हम यदि मौन होकर बैठते हैं और इस देशकी छलनाओंको ही सत्य मानकर जीवन-यापन करते रहते हैं तो हमारा निस्तार कठिन है। इस मायालोकके समस्त प्रलोभनोंको ठुकराते हुए—मस्तिष्कमें प्रखर ज्ञानकी किरणोंका उद्रेक करते हुए हमें अपनी मुक्तिका पथ प्रशस्त करना है और अपनी खोयी हुई राह ढूँढ़ निकालनी है। प्रेयसीके नवनीत-मसृण कंचन-

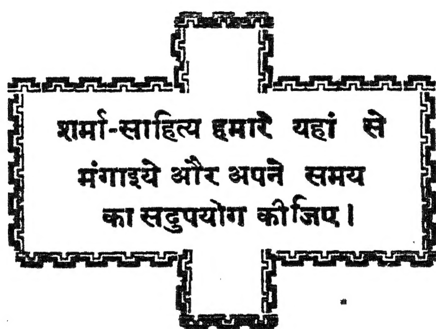
तनसे आलिङ्गित होकर रातें बिताना तो दूर रहा, आवश्यकतासे अधिक विश्राम भी हमारे लिये पाप है। सामाजिक क्षेत्रमें प्रविष्ट होकर जनताका सन्मान-भाजन बननेका और उनके द्वारा सत्कृत होनेका समय हमारे पास नहीं है। हमारी प्रगतिका मार्ग ही कुछ दूसरी ओर है।

जम्बाल-जालसे परिपूर्ण सरोवरमें तैरनेवाले व्यक्तिको जिस प्रकार सम्हल-सम्हल कर आगेकी ओर बढ़ना पड़ता है या विषाक्त कण्टकोंसे संकुलित वनान्त-पथके यात्रीको जिस प्रकार प्रत्येक पद-निक्षेपपर रुक-रुककर देखना पड़ता है, उसी तरह हमें भी कदम-कदमपर सत्यासत्यका, ज्ञानाज्ञानका, तिमिर-प्रकाशका स्पष्टीकरण करते हुए आगे बढ़ना है!

हमें सफलता मिलेगी। हम इस गहनतम तिमिराकीर्ण कारासे वहिर्गत हो सकेंगे। क्योंकि असहाय होते हुए भी हम पूर्ण रूपसे असहाय नहीं हैं। हमारी सहायताके लिये अन्यत्र प्रयास हो रहे हैं। हमारे अज्ञान-पाशको विच्छिन्न करनेकी चेष्टाओंमें केवल हमीं नहीं, अन्यलोकनिवासी भी व्यस्त हैं। उनके द्वारा भेजे गये संदेशों पर,—उनके निर्देशों और संकेतोंपर अविश्वास नहीं करना चाहिये। हमारा यह मूर्खतापूर्ण अविश्वास ही हमारी साम्प्रतिक विवशताओंका कारण बना हुआ है।

और, जब इस सौरमण्डलके नशीले वातावरणसे मुक्त होकर हम अपने लोकोंको पहुँचेंगे, उस समयका जो दृश्य होगा, उसकी उपमा इस ग्रहके किसी भी दृश्यसे नहीं दी जा सकती! शायद हमारी वही हालत होगी, जो विदेश जाकर खो जानेवाले यात्रीकी घर लौटनेपर हुआ करती है या उस व्यक्तिकी-सी, जो भूतोंके खँडहरमें रात बिताकर प्रातःकाल अपने गाँवमें आता है और लोग उसके नैश अनुभवोंको सुननेके लिये उसे चारों ओरसे घेर लेते हैं!

———


शर्मा-साहित्य हमारे यहां से
मंगाइये और अपने समय
का सदुपयोग कीजिए।